कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 6, Issue 23
July-Sept. 2009

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ६ - अंक २३, जुलाई-सितम्बर २००९

हम भारतवासी, हम भारतवंशी

स्नेह ठाकुर

कदमों से कदम मिला
कंधे से कंधा मिला
चलते हैं हम ऐसे जब
दुश्मन के दिल हिलते हैं तब।
रोकें चाहे आँधियाँ, ज़मी या आसमाँ हमें
पाना है लक्ष्य हमें हर हाल में
हिम्मत से चलें, धरती हिले कदमों तले
क्या दूरियाँ, क्या फ़ासले, मंज़िल लग जायेगी गले।
चलना है हमें सुबह-शाम
रुकना, झुकना नहीं हमारा काम
अब तो यही रास्ता है अपना
पहचान ले, यही सपना है अपना।
आगे ही आगे बढ़ते जाना है
विध्वंस-बादल बन संहार करना है
शोला बन आग उगलना है
दुश्मन के छक्के छु ाना है।
आये हैं रण-प्रांगण में, लिये जान हथेली पे
मो ें कलाई मौत की, है हिम्मत हममें
रण-बाँकुरे, हम पहुँचेंगे मंज़िल पे
हो जा होशियार, हम हैं आसमाँ की बुलन्दी पे।
हम अपनी सरहदों की लौह दीवार हैं
दुश्मनों को हरदम खदे ने को तैयार हैं
पछताओगे ताकत हमारी आज़मा के तुम
ऐ गीद , सियारों, न डालो हमारी माँ पे बुरी नज़र तुम।
माँ के दूध का कर्ज़ चुकाना हमें आता है
माँ के चरणों की कसम खा, सर काटना तुम्हारा हमें आता है
भारत-माँ की संतान हम, तुम्हें समझाना हमें आता है
अपनी माँ के चरणों में शीश तुम्हारा झुकाना हमें आता है।
पुरुखों का शौर्य, बन लहू बहता हमारी रगों में
झुकता नहीं यह शीश कभी किसी के आगे
हम भारतवासी हैं, राणा प्रताप, वीर छत्रपति शिवाजी
हर नारी यहाँ की है, रण-बाँकुरी झाँसी रानी लक्ष्मीबाई।
भरा प ा है इतिहास हमारा वीर प्रतापों से
हम हैं गर कोमल सुमन-से, तो सशक्त लौह-तार से
तो देंगे दुश्मन की ग्रीवा कमल-नाल-सी,फो देंगे कपाल उसका
हम हैं दोस्तों के दोस्त, पर बरपाते दुश्मनों पर कहर ब ा।
ऐ आक्रमणकारियों भाग जाओ दुम दबा के यहाँ से
क्यों शेर की माँद में आते हो जान-बूझ के !
माँ की सुरक्षा का भार निभाना जानते हैं हम सभी
जन-जन भारत का चने चबवायेगा तुम्हें हर क्षण ही।
हम भारतवासी, हम भारतवंशी
कदमों से कदम मिला
कंधे से कंधा मिला
चलते हैं हम ऐसे जब
दुश्मन के दिल हिलते है तब।

जय हिन्द, जय भारती।

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
परदेशी भाषा की गुलामी	महात्मा गाँधी	६
अँग्रेजी और इंडिया	डॊ. मालती शर्मा	८
अनन्य	शैल अग्रवाल	९
बूँदें	आशमा कौल	१३
कन्या रत्न का दर्द	डॊ. प्रेम जनमेजय	१४
अस्तित्व	डॊ. दमोदर ख से	१५
दर्द और मुक्ति	डॊ. दाऊजी गुप्त	१६
अभाव	विष्णु प्रभाकर	१८
दीया जलाये जा	डॊ. शशि तिवारी	२२
खाते हिन्दी की, गाते अँग्रेजी की	जसदेव सिंह	२३
भारत माता और हिन्दी	रामगोपाल 'राही'	२५
एडॊप्टेड डॊटर	इन्दु गुप्ता	२६
सृजन का भार है मुझ पर	डॊ. रमेश मिलन	२६
मुझे माफ़ करना	दिनेश नन्दिनी डालमिया	२७
फिर सपने बो गई ज़िन्दगी	सावित्री शर्मा	२९
डॊ.नरेन्द्र कोहली की औपन्यासिक पृष्ठभूमि	डॊ. अनिल कुमार	३०
नगाधिप	डॊ. परेश	३३
अनोखा रिश्ता	करुणा श्री	३४
रिश्ते जो` जाते हैं	शशिप्रकाश पाराशर	३४
होटल ताज	महेन्द्र कुमार सिरोठिया	३५
एक उत्सव भी है हिन्दी	नरेश शांडिल्य	३७
लगन	दुबे उमादत्त अनजान	३७
कारगिल के शहीद	शकुन्तला पाराशर	३८
माँ के लिए	डॊ. सरला अग्रवाल	३९
परिन्दे का घोंसला	सुरेन्द्र सिंह 'संतोषी'	४४
हम भारतवासी, हम भारतवंशी	स्नेह ठाकुर	१अ
उज्ज्वल भविष्य का प्रारूप	अंजु दुआ जैमिनी	४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00

डाक द्वारा By Mail................................$35.00

Website: http://ca.geocities.com/sneh.thakore/Home.html

e-mail: sneh.thakore@yahoo.ca

संपादकीय - 'हिन्दी हीरक जयन्ती'

भारत के भूतपर्व राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन ने कहा था कि, "राष्ट्रीय एकता का सर्वश्रेष्ठ माध्यम हिन्दी है। हिन्दी वह धागा है, जो विभिन्न मातृभाषाओं-रूपी फूलों को पिरोकर भारत-भाषा के एक सुन्दर हार का सृज़न करेगा।" पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "भारत के हित में, भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के हित में, ऐसा राष्ट्र बनाने के हित में जो अपनी आत्मा को पहचाने, जिसे आत्मविश्वास हो, जो संसार के साथ सहयोग कर सके, हमें हिंदी को अपनाना चाहिये।' स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गाँधी ने देश के भविष्य के लिए, देश की एकता और अस्मिता के लिए हिंदी को ही राष्ट्र की सम्पर्क भाषा माना। भारतेन्दु ने सूत्ररूप में कहा, 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।' गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबंध में लिखा है, 'जिस हिंदी भाषा के खेत में ऐसी सुनहरी फसल फली है, वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही प ी रहे, तो भी उसकी स्वाभाविक उर्वरता नहीं मर सकती, वहाँ फिर खेती के सुदिन आएँगे और पौष मास में नवान्न उत्सव होगा।' डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने कहा था, 'हिंदी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की भारती के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने यह घोषणा की थी, 'हिंदी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।' हिंदी के प्रबल पक्षधर डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जी न केवल वर्षों पहले सदन में हिंदी के लिए ल े, वो आजन्म हिंदी के प्रति समर्पित रहे। उन्होंने हिंदी के लिये बहुत कुछ किया।

इतना कुछ कहे जाने के बाद भी हिंदी की जो स्थिति होनी चाहिये, वह नहीं है। अतः अब हम सभी को कथनी को करनी बनाने का दायित्व निभाना है। अधिकतर यह सुनने में आता है कि हम अकेले क्या करें ! हाँ, यह सत्य है कि अकेला चना भा नहीं फो सकता; पर यह भी उतना ही सत्य है कि यदि एक "अकेला" स्वयं चलने की हिम्मत ज़ुटा ले, तो मुझे विश्वास है कि उस के साथ ऐसे कई और "अकेले" ज़ु जायेंगे। और इन "अकेलों" का एक काफ़िला ही बन जायेगा। कारवाँ चल प ेगा। समुदाय, समाज बनाने के लिये हम "अकेलों" को ज़ु ने की आवश्यकता है। अकर्मण्य बैठने की नहीं। कर्मण्यता ही सफलता की कुंजी है। अतः इस सोच में समय गँवाने की जगह कि दूसरा क्या कर रहा है, हिंदी के उत्थान का दायित्व हम सभी को लेना है; भारत के साथ-साथ विदेशों में बसे भारतवंशियों को भी। हमें एक-दूसरे से कंधे से कंधा जो आगे बढ़ना है। भारतवंशियों से आग्रह है कि वो हिन्दी के प्रति संकल्पित कटिबद्ध हों। यह सच है कि विदेशों में हिन्दी चार कदम आगे बढ़ती है तो दो कदम पीछे घिसट जाती है। यह एक चिकनी पहा ी के समान दुर्गम्य, दुर्दम्य अवश्य है, इस पर चढ़ना दुरूह, दूभर अवश्य है, पर असम्भव कदापि नहीं। हमें इससे हतोत्साहित नहीं होना है, वरन् इससे प्रेरित होना है कि चाहे हमारी गति धीमी है पर हम एक न एक दिन अवश्य सफलता का शिखर चूमेंगे। वह मंजिल ही क्या जो आसानी से मिल जाये। कठोर परिश्रम से मिली सफलता का आनन्द कुछ और ही है। अतः हमें अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहना है। संशय को मन से निकाल देना है। कर्म पर डटे रहना है क्योंकि कर्म संशय को काटते हैं। हमें यह मानकर चलना है कि हिन्दी के प्रति कोई भी सजग, कर्मशील व्यक्ति अकेला नहीं है। यद्यपि कि अलग-अलग हम एक बूँद हैं पर यही बूँद अपने जैसी अन्य बूँदों को मिला, एकज़ुट हो, सागर का निर्माण करती है। और सच तो यह है कि बूँद भी अकेली नहीं होती, बूँद में ही समुद्र है और समुद्र में ही बूँद। संकल्प भय नहीं मानता। इरादे नेंक हों तो रुकावटें स्वयं ही मुँह फेर लेती हैं। कभी ऐसी रात्रि नहीं आती जिसके अंधकार में प्रकाश दस्तक न देता हो। सृजन अंधकार का ही प्रकाश है। मनुष्य की सबसे ब ी भूल ही यह है कि वह सोचता है कि वह दुर्बल है। दुर्बलता, अकर्मण्यता, मृत्यु है। बल, कर्मठता ही जीवन है। बल, कर्म, तमाम भाव-रोगों की एकमात्र औषधि है। अतः हमें हिन्दी के उत्थान के प्रति किये गये संकल्पों की बार-बार पुनरावृत्ति करनी है, उसमें नव-प्राण फूँकने हैं। हमें राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इस घोषणा को साकार करना है :

"है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी
हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी"

संस्कृति और भाषा का चोली-दामन का साथ है। संस्कृति भाषा के बिना जीवित नहीं रह सकती। संस्कृति को ज़िलाए रखना है तो भाषा को जिन्दा रखना अति आवश्यक है। भावी पीढ़ी को, भारतवंशियों को, भारतीय संस्कृति की मशाल जलाये रखने के लिए साहित्य की आवश्यकता है, अपनी भाषा में रचित साहित्य की आवश्यकता है, अनुवादित साहित्य की नहीं। अनुवाद अनुवाद ही है, उसमें वो बात आ ही नहीं सकती जो मातृभाषा में है। आ नहीं सकती ख़ुशबू काग़ज़ के फूलों से। प्यार से कहा गया, रोष से कहा गया, अन्य भावों से कहा गया वाक्य, "तुम गधे हो" के कई भावार्थ निकलते हैं, पर अँग्रेजी में अनुवादित "यू आर डॉन्की" के भावार्थ से भावार्थ तो क्या, कहीं कुछ अर्थ भी नहीं निकलता। अनुवाद का अपना अलग स्थान व महत्व है, पर अपनी भाषा सर्वोपरि है।

सरस्वती माँ ने मुझ अकिंचन पर अपनी कृपा-दृष्टि डाल अपनी उपासना के अवसर प्रदान किए हैं। उन्हीं की कृपा से कुछ थो ा-बहुत साहित्य-सृजन, साहित्य-अर्चना से जु ी रहती हूँ। भारतीय व नार्थ-अमेरिकन पत्रिकाओं तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखी अपनी पुस्तकों द्वारा यथासम्भव माँ सरस्वती की उपासना का प्रयास करती आ रही हूँ। यद्यपि, यह प्रयास बहुत ही छोटा, सागर में एक बूँद की तरह है।

प्रयासों की इस ल ी में छः वर्षों से एक क ी और जो ी है, 'वसुधा'। 'वसुधा' हिन्दी साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका द्वारा मेरा प्रयास है कि भारतीय साहित्यकार एवं आप्रवासी भारतीय साहित्यकारों से, अधिकाधिक भारतवंशियों को अवगत कराया जाए। हिन्दी साहित्य और भारतीय संस्कृति संसार के कोने-कोने में फले-फूले।

"संस्कृति की रक्षा के लिये
भाषा की रक्षा है ज़रूरी
हिन्दी के उत्थान के लिये
करना है हमें प्रयत्न भारी।"

इतिहास अतीत की व्याख्या है। साहित्य वर्तमान का दर्पण है और समाज का भविष्य निर्माता भी। साहित्यिक गतिविधियों द्वारा ही हम, भारतीय समाज - प्रवासी व आप्रवासी का, न केवल वर्तमान उज्ज्वल बनायेंगे वरन् उज्ज्वल भविष्य की नींव, ठोस आधारशिला का निर्माण भी करेंगे।

जहाँ एक ओर साहित्यकार के लिए स्वान्तः सुखाय, आत्माभिव्यक्ति, मानवीयता एवं सामाजिक दायित्वों हेतु लेखन ज़रूरी होता है, उसके बिना वह रह नहीं सकता, लिखना श्वास लेने की प्रक्रिया के समान है; वहीं दूसरी ओर पाठकों द्वारा उसका पठन भी उतना ही महत्वपूर्ण है। साहित्यकार की रचनाओं का पाठकों द्वारा पठन साहित्य का चरमोत्कर्ष है। सभ्य, सुसंस्कृत समाज के लिए ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। इसका भार दोनों के स्कंधों पर है। भारतीय राजभाषा-राष्ट्रभाषा को कोने-कोने में पहुँचाना, उसे यथोचित सम्मान दिलाने का दायित्व जितना साहित्यकारों का है, पाठकों का दायित्व उससे किसी भी दशा में कम नहीं। हम सब हाथ की उँगलियों के समान हैं जो कि कार्यरत हो बहुत कुछ कर सकती हैं पर जब वो एक मुट्ठी में बँध जाती हैं तो सशक्त हो जाती हैं। हम सभी को इस प्रयास-कर्म में अपना-अपना धर्म निभाने के लिए सशक्त मुट्ठी बनना है। साहित्यकारों की उँगलियों से जु ीं पाठकों की उगँलियाँ ही लक्ष्य का अंतिम प ाव है। जिस तरह अभी तक प्रशंसनीय उत्साह से आगे बढ़ रहे हैं उसी तरह हम उत्साह की डोर पक ़ इस पहा ी पर चढ़ते चले जाएँ, शिखर कैसे न मिलेगा ! मंजिल दूर है पर दुःसाध्य नहीं। हमारी प्रिय हिन्दी ने संसार के कोने-कोने में अपनी हरी-भरी शाखायें फैला दी हैं। यहाँ तक कि आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन ने संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय के मुख्य सभागार में हिन्दी का ध्वज गर्वपूर्वक फहराया है जिसका कैनेडा से विशिष्ट अतिथि के रूप में साक्षी होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। अतः हिन्दी की उत्तरोत्तर प्रगति की इस पृष्ठभूमि पर ठोस कदम रख हम सभी हिन्दी-प्रेमी आइये एकजुट हो -

"हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।
तन से, मन से, धन से
तन, मन ,धन, जीवन से
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

हृदय से, वाणी से, निश्छल, निर्मल मति से
श्रद्धा से नतमस्तक
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।
खिलते शैशव से, उमगते यौवन से
प्रौढ़ता की प्रज्ञा से, गौरव से
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।
ले सीख इतिहास से, अतीत के गौरव से
सुखद भविष्य का निर्माण करें
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।
बँधें कर्तव्य से, तिरंगे की शान से
सर ऊँचा उठा गर्व से
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।"

हमें घर-बाहर, समाज में हिंदी का वातावरण बनाना है। हिंदी की गूँज पूरे विश्व में अनवरत् गुंजायमान करनी है। भाषा केवल शब्दों का टंकन ही नहीं है। भाषा तो संस्कृति की वाहिनी है। यही भावी पीढ़ी की विरासत है। अतः

"एकाग्रता से जुटे रहो
हिन्दी-सुमन-सुगंधि बिखेरते चलो
आज हैं हम जितने यहाँ
उनमें औरों को भी मिलाते चलो
हिंदी का दायरा बढ़ाते चलो।
है दम लोगों की एकता में
न समझो मामूली भी इसे
समाज की रीढ़ है यह भी ही
करेगी जिसे मुखर साहित्यकार की लेखनी
मिल कर दोनों बनायेंगी इतिहास गौरवशाली।
एकाग्रता से जुटे रहो
हिन्दी-सुमन अर्पित करते चलो
बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

इसी ध्येय की डोर का छोर पक` 'वसुधा' व 'सद्भावना हिन्दी साहित्यिक संस्था' के तत्वावधान में हिन्दी प्रेमियो ने 'राजभाषा हिन्दी हीरक जयन्ती' के महापर्व का उत्सव 'काव्य व संगीत संगोष्ठी' के आयोजन द्वारा मनाया। अमृता शाक्य के नेतृत्व में, सभी उपस्थित हिन्दी-प्रेमियों द्वारा की गयी सामूहिक सरस्वती वंदना के साथ मुख्य अतिथि तत्कालीन कोंसुलाध्यक्ष माननीय श्री सुरेन्द्र अरोरा एवं श्रीमती नीलिमा अरोरा ने माँ सरस्वती के चरण-कमलों में दीप प्रज्वलित किया।

तत्पश्चात्
हिन्दी प्रेमियों के मध्य
हिन्दी हीरक जयन्ती पर्व के
शुभ अवसर पर
सभी सहृदय हिन्दी भक्तों से
अनुरोध किया गया कि वे
अपनी लाडली हिन्दी के
सतत प्रचार प्रसार के लिये
सद्भावना से ओत-प्रोत
वसुधा पर हिन्दी का वर्चस्व
बढ़ाने का संकल्प दोहरायें।

संगोष्ठी के प्रतिभागी क्रमानुसार हैं - श्री सुरेन्द्र अरोरा, श्री दुबे उमादत्त अनजान, श्री राजीव शर्मा, श्री वीरेन्द्र ढींगरा, श्री शांति स्वरूप सूरी, श्री जगमोहन मेहरा, श्री गोपाल बघेल, श्री आनन्द

गोयल, श्रीमती दीप एटवाल, डॉ. प्रीति धामणे, कुमारी अमृता शाक्य, आचार्य संदीप कुमार त्यागी, श्री सरन घई एवं श्रीमती स्नेह ठाकुर।

इसी शुभ अवसर पर संस्था द्वारा प्रकाशित 'काव्य-वृष्टि' व 'बौछार' पुस्तकों की सूची में हिन्दी की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में जु ने वाली शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक 'हीरक काव्य' के प्रकाशन की भी घोषणा की गयी। संस्था व वसुधा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सतत् संलग्न हैं। आयोजन एवं पुस्तक प्रकाशन प्रचार-प्रचार की श्रृंखला की एक क ी है।

टोराण्टो, कैनेडा में इस सर्वप्रथम आयोजित राष्ट्रभाषा हिन्दी हीरक जयन्ती महापर्व को सफल बनाने हेतु, संस्था के अध्यक्ष के नाते, विशिष्ट अतिथियों, कवियों, संगीतज्ञों, श्रोताओं एवं संस्था के कर्मठ सदस्यो, सभी के प्रति आभारी हूँ। यह सफल आयोजन सभी के यथोचित योगदान का प्रतिफलन है।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा आयोजित सम्मान समारोह में लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारों व विद्वानों को विभिन्न सम्मानों से सम्मानित किया गया। यह 'वसुधा' का सौभाग्य है कि इनमें से कुछ साहित्यकार 'वसुधा' से ब ़ी स्नेहिल रूप से जु ़े हुए हैं, 'वसुधा' के शुभाकांक्षी हैं। डा. विनोद बाला अरुण 'प्रवासी भारतीय हिन्दी भूषण सम्मान' से विभूषित की गईं। श्रीमती चन्द्रकांता को 'सौहार्द सम्मान' से व श्रीमती शैल अग्रवाल को 'विदेश प्रसार सम्मान' से सम्मानित किया गया।

संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डा. शंभुनाथ जी ने अपने वक्तव्य में संस्थान के सम्बन्ध में कहा कि - हिन्दी सभी चुनौतियों से परिचित है। कैसे आगे बढ़ेगी और आगे का द्वार कैसे खोला जाए उससे भी परिचित है। उन्होंने कहा कि हिन्दी संस्थान हिन्दी के लिए अहर्निश समर्पित है। उनका यह कथन जहाँ हिन्दी के प्रति उनका दृढ़ निश्चय, दृढ़ संकल्प दर्शाता है, वहीं हिन्दी प्रेमियों में हिन्दी के उन्नयन के प्रति दृढ़ संकल्पित होने का नव उत्साह जगाता है।

'वसुधा' के ही एक अन्य लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार डा. सुरेश प्रकाश शुक्ल को विख्यात अवधी कवि पंडित बंशीधर शुक्ल की जयंती समारोह के अवसर पर राष्ट्रकवि पंडित बंशीधर शुक्ल स्मारक एवं साहित्य प्रकाशन समिति द्वारा 'अवधी वारिधि' की उपाधि से समाभूषित कर सम्मानित किया गया।

उपरोक्त सभी साहित्यकारों को तथा अन्य सभी हिन्दी प्रेमियों को हिन्दी के प्रति किये गये कार्यों की बधाई व भविष्य में भी हिन्दी के प्रचार, प्रसार, उत्थान हेतु उनके द्वारा दृढ़ संकल्प की कामना।

विधि का विधान भी कैसा अजीब है ! जिस वर्ष हम हिन्दी की हीरक जयन्ती मना रहे हैं उसी वर्ष उसने हमसे हिन्दी का वरिष्ठ साहित्कार, हिन्दी के प्रबल पक्षधर, परम हितैषी छीन लिया। अपार दुःख और भारी मन से इस सत्य को अब तक झुठला रही थी जैसे कि मेरे झुठलाने से यह सत्य बदल जायेगा। काश ! ऐसा होता। आदरणीय विष्णु प्रभाकर जी हमारे बीच से न जाते। इस अंक में विष्णु जी की कहानी 'अभाव' संकलित है। विष्णु जी एक ऐसा अभाव हमें दे गये हैं जिसकी पूर्ति कभी संभव नहीं। हमारी हर दिल्ली यात्रा पर उनका स्नेहसिक्त वरदहस्त अब स्मृति की धरोहर बन गया है। विष्णु जी, उनके सुपुत्र अतुल व पुत्रवधु अनुराधा ने जिस स्नेह-बंध से हमें बाँधा है उसके हम आभारी हैं, चिर ॠणी हैं। एक बार यहाँ आने पर ज्ञात हुआ कि दिल्ली में खींची गयी उनकी फोटो नहीं आई तो मैंने उन्हें लिखा कि कैमरे की काणी आँख धोखा दे गई। प्रत्युत्तर में उन्होंने लिखा, 'जब १९६२ में होने वाले 'शांति सम्मेलन' में मैं सोवियत रूस गया था तब विश्व प्रसिद्ध लेखक डॉ. न्यापाल साहब के साथ विशेष रूप से खींचा गया मेरा चित्र नहीं आया था।' यह तुलना उनके व्यक्तित्व की महानता, उनके चरित्र की उदारता का परिचय देती है। उनके ब प्पन, उनकी सदाशयता, उनकी शालीनता उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मेरा सादर नमन। विष्णु जी अपनी जीवन्त रचनाओं द्वारा सदा हमारे साथ रहेंगे। उनका साहित्य कालजयी है और यही उन्हें अमरत्व प्रदान करता है। विष्णु जी का साहित्यिक योगदान तो अपरिमेय है ही, उनकी मानवीयता भी कम महान नहीं, जाते-जाते वो मानव उपकार हेतु अपना शरीर भी अनुसंधान हेतु दे गये।

ठाकुर साहब व मेरी ओर से, वसुधा के रचनाकारों व पाठकों की ओर से आदरणीय विष्णु जी के परिवार को हमारी संवेदनाएँ, आदरणीय विष्णु जी को हमारी सादर भावभीनी श्रद्धांजलि.....

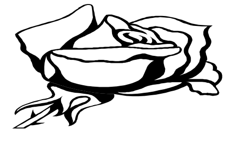

स्नेह ठाकुर

परदेशी भाषा की गुलामी

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दिये गये भाषण से)

महात्मा गाँधी

मैंने सर राधाकृष्णन् से पहले ही कह दिया था कि मुझे क्यों बुलाते हैं? मैं यहाँ पहुँच कर क्या करुँगा? जब ब े-ब े विद्वान् मेरे सामने आ जाते हैं तो मैं हार जाता हूँ। जब से हिन्दुस्तान आया हूँ, मेरा सारा समय काँग्रेस में और गरीबों, किसानों और मजदूरों वगैरा में बीता है। मैंने उन्हीं का काम किया है। उनके बीच मेरी ज़ुबान अपने आप खुल जाती है। मगर विद्वानों के सामने कुछ कहा तो मुझे ब ी झिझक मालूम होती है। सर राधाकृष्णन् ने मुझे लिखा कि मैं अपना लिखा हुआ भाषण उन्हें भेज दूँ। पर मेरे पास उतना समय कहाँ था? मैंने उन्हें जवाब दिया कि वक्त पर मुझे जैसी प्रेरणा मिल जायेगी, उसी के अनुसार मैं कुछ कह दूँगा। मुझे प्रेरणा मिल गई है। मैं जो कुछ कहूँगा, मुमकिन है आपको अच्छा न लगे। उसके लिए आप मुझे माफ कीजियेगा। यहाँ आकर जो कुछ मैंने देखा, और देख कर मेरे मन में जो चीज़ पैदा हुई, वह शायद आपको चुभेगी। मेरा ख़्याल था कि कम-से-कम यहाँ तो सारी कार्यवाही अँग्रेजी में नहीं बल्कि राष्ट्रभाषा में ही होगी। मैं यहाँ बैठा यही इन्तजार कर रहा था कि कोई न कोई तो आखिर हिन्दी या उर्दू में कुछ कहेगा। हिन्दी, उर्दू न सही, कम से कम मराठी या संस्कृत में ही कुछ कहता। लेकिन मेरी सब आशाएँ निष्फल हुईं।

अँग्रेजों को हम गालियाँ देते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान को गुलाम बना रखा है, लेकिन अँग्रेजी के तो हम खुद ही गुलाम बन गये हैं। अँग्रेजों ने हिन्दुस्तान को काफी पामाल किया है। परन्तु इसके लिए मैंने उनकी क ी से क ी टीका भी की है। परन्तु अँग्रेजी की अपनी इस गुलामी के लिए मैं उन्हें जिम्मेदार नहीं समझता। खुद अँग्रेजी सीखने और अपने बच्चों को अँग्रेजी सिखाने के लिए हम कितनी-कितनी मेहनत करते हैं? आज कोई हमें यह कहता है कि हम अँग्रेजों की-सी अँग्रेजी बोल लेते हैं, तो हम मारे खुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़ कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है? इसकी वजह से हमारे बच्चों पर कितना ज़ुल्म होता है? अँग्रेजी के प्रति हमारे इस मोह के कारण देश की कितनी शक्ति और कितना श्रम बरबाद होता है, इसका पूरा हिसाब तो हमें तभी मिल सकता है, जब गणित का कोई विद्वान् इसमें दिलचस्पी ले। कोई दूसरी जगह होती तो शायद यह सब बर्दाश्त कर लिया जाता, मगर यह तो हिन्दू विश्वविद्यालय है। जो बातें इसकी तारीफ में कही गई हैं कि यहाँ के अध्यापक और विद्यार्थी इस देश की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के जीते-जागते नमूने होंगे। मालवीय जी ने तो मुँहमाँगी तनखाहें देकर अच्छे अध्यापक यहाँ आप लोगों के लिए जुटा रखे हैं। अब उनका दोष तो कोई कैसे निकाल सकता है? दोष जमाने का है। आज हवा ही कुछ ऐसी बन गई है कि हमारे लिए उसके असर से बच निकलना मुश्किल हो गया है। लेकिन अब वह जमाना भी नहीं रहा, जब विद्यार्थी को जो कुछ मिलता था, उसी में संतुष्ट रह लिया करते थे, अब तो वे ब े-ब े तूफान भी ख े कर लिया करते हैं। अगर उन्हें ईश्वर बुद्धि दे तो वे कह सकते हैं - 'हमें अपनी मातृभाषा में पढ़ाओ।' मुझे यह जान कर खुशी हुई है कि यहाँ आंध्र के २५० विद्यार्थी हैं। क्यों न वे सर राधाकृष्णन् के पास जायें और उनसे कहें कि यहाँ हमारे लिए एक आन्ध्र विभाग खोल दीजिये और तेलुगु में हमारी सारी पढ़ाई का प्रबंध कर दीजिये? और अगर वे मेरी अकल से काम लें, तब तो उन्हें कहना चाहिये कि हम हिन्दुस्तानी हैं, चुनांचे हमें ऐसी ज़ुबान में पढ़ाइये जो सारे हिन्दुस्तान में समझी जा सके। और ऐसी ज़ुबान तो हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।

जापान आज अमेरिका और इँग्लैंड से लोहा ले रहा है। लोग इसके लिए उसकी तारीफ करते हैं, मैं नहीं करता। फिर भी जापान की कुछ बातें हमारे लिए अनुकरणीय हैं। जापान के ल कों और ल कियों ने योरुप वालों से जो कुछ भी पाया है, उसे अपनी मातृभाषा जापानी के जरिये ही पाया है, अँग्रेजी के जरिये नहीं। जापानी लिपि बहुत कठिन है, फिर भी जापानियों ने रोमन लिपि को कभी नहीं अपनाया। उनकी सारी तालीम जापानी लिपि और जापानी जबान के जरिये ही होती है। जो चुने हुए जापानी पश्चिम देशों में खास किस्म की तालीम के लिए भेजे जाते हैं, वे भी जब आवश्यक ज्ञान पाकर लौटते हैं, तो अपना सारा ज्ञान अपने देशवासियों को जापानी भाषा के जरिये ही देते हैं। अगर वे ऐसा न करते और देश में आकर दूसरे देशों जैसे स्कूल और कालेज अपने यहाँ भी बना लेते और अपनी भाषा को तिलांजलि देकर अँग्रेजी में सब कुछ पढ़ाने लगते, तो उससे बढ़ कर बेवकूफी और

क्या होती? इस तरीके से जापान वाले नई भाषा तो सीखते, लेकिन नया ज्ञान न सीख पाते। हिन्दुस्तान में आज हमारी महत्वाकांक्षा ही यह रहती है कि हमें किसी तरह कोई सरकारी नौकरी मिल जाये, या हम वकील, बैरिस्टर, जज वग़ैरा बन जायें। अँग्रेजी सीखने में हम बरसों बिता देते हैं तो भी सर राधाकृष्णन् या मालवीय जी महाराज के समान अँग्रेजी जानने वाले हमने कितने पैदा किये हैं? आखिर वह पराई भाषा ही है न? इतनी कोशिश करने पर भी उसे अच्छी तरह सीख नहीं पाते। मेरे पास सैक ों खत आते रहते हैं, जिनमें कई एम.ए. पास लोगों के भी होते हैं। परन्तु चूँकि वे अपनी ज़ुबान में नहीं लिखते, इसलिए अँग्रेजी में अपने ख्याल अच्छी तरह ज़ाहिर नहीं कर पाते।

चुनांचे यहाँ बैठे-बैठे मैंने जो कुछ भी देखा, उसे देख कर मैं तो हैरान रह गया। जो कार्यवाही यहाँ हुई, जो कुछ कहा या पढ़ा गया, उसे आम जनता तो कुछ समझ ही नहीं सकी। फिर भी हमारी जनता में इतनी उदारता और धीरज है कि वह चुपचाप सभा में बैठी रहती है। और ख़ाक समझ में न आने पर भी यह सोच कर संतोष कर लेती है कि आख़िर ये हमारे नेता ही हैं न? कुछ अच्छी-अच्छी बात कहते होंगे। लेकिन उससे इसे लाभ क्या है? वह तो जैसी आई थी वैसी ही खाली लौट जाती है। अगर आपको शक हो तो मैं अभी हाथ उठवा कर लोगों से पूछूँ कि यहाँ की कार्यवाही वे कितना कुछ समझते हैं? आप देखियेगा कि वे सब 'कुछ नहीं, कुछ नहीं' कह उठेंगे। यह तो हुई आम जनता की बात। अब अगर आप यह सोचते हों कि विद्यार्थियों में से हर एक ने हर बात को समझा है, तो वह दूसरी ब ी गलती है।

आज से पच्चीस साल पहले मैं यहाँ आया था, तब भी मैंने यही सब बातें कही थीं। आज यहाँ आने पर जो हालत मैंने देखी, उसने उन्हीं चीज़ों को दोहराने के लिए मजबूर कर दिया।

दूसरी बात जो मेरे देखने में आई, उसकी तो मुझे जरा भी उम्मीद न थी। आज सुबह मैं मालवीय जी महाराज के दर्शन को गया था। बसंत पंचमी का अवसर था, इसलिए सब विद्यार्थी भी वहाँ आये थे। मैंने उस वक्त भी देखा कि विद्यार्थियों को जो तालीम मिलनी चाहिये, उस तरह चलना उन्होंने सीखा नहीं था। यह कोई मुश्किल काम नहीं, कुछ समय में सीखा जा सकता है। सिपाही जब चलते हैं, तो सिर उठाये, सीना ताने, तीर की तरह सीधे चलते हैं। लेकिन विद्यार्थी तो उस वक्त आ े-टेढ़े, आगे-पीछे, जैसा जिसका दिल चाहता था, चलते थे। उनके उस 'चलने' को चलना कहना भी शायद मुनासिब न हो। मेरी समझ में तो इसका कारण भी यही है कि हमारे विद्यार्थियों पर अँग्रेजी ज़ुबान का बोझ इतना प जाता है कि उन्हें दूसरी तरफ सिर उठा कर देखने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती। यही वज़ह है कि उन्हें दरअसल जो सीखना चाहिये उसे वे सीख नहीं पाते।

एक और बात मैंने देखी। आज जब हम श्री शिवप्रसाद गुप्त के घर से लौट रहे थे, रास्ते में विश्वविद्यालय का विशाल प्रवेश द्वार प ा। उस पर नज़र गई तो देखा, नागरी लिपि में 'हिन्दू विश्वविद्यालय' इतने छोटे हरफों में लिखा है कि वे ऐनक लगाने पर भी नहीं पढ़े जाते। पर अँग्रेजी में बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी ने तीन-चौथाई से भी ज्यादा जगह घेर रखी थी। मैं हैरान हुआ कि यह क्या मामला है? इसमें मालवीय जी महाराज का कोई कसूर नहीं, यह तो किसी इंजीनियर का काम होगा। लेकिन सवाल तो यह है कि अँग्रेजी की वहाँ जरूरत ही क्या थी? अँग्रेजी का वहाँ लिखा जाना भी हम पर जमे हुए अँग्रेजी ज़ुबान के साम्राज्य का एक सबूत है।

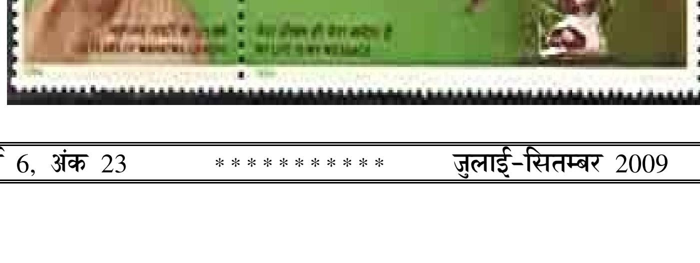

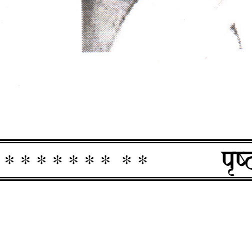

अँग्रेजी और इंडिया

डा. मालती शर्मा

चले गये अँग्रेज
रह गई अँग्रेजी
सत्ता के सिर पर
चढ़ बैठी अँग्रेजी
हिन्दी बन रही
विश्व की भाषा
भारत की भाषा अँग्रेजी !!
भारत अब भी
बना हुआ है इंडिया
बच्चे-बच्चे की ज़ुबान पर
चढ़ा हुआ है इंडिया
पूरे विश्व में जाना जाता
भारत का नाम 'इंडिया'
समुद्रों पर वह तैर रहा है
और उ रहा विमानों पर
खेलों के मैदानों में भी
खेल रहा है इंडिया
बाम्बे बना 'मुंबई'
लेकिन उसी मुंबई में अब भी
बना न भारत-द्वार
बना है 'गेट वे ऑफ इंडिया'

भारत की आज़ादी के हित
अगणित वीर शहीद हुए
सूने हुए माँओं के आँचल
माँगों के सिन्दूर पुछे
उनकी बलिदानी आत्माएँ
जहाँ बोलतीं भारत की जय
भारतीय गणतंत्र और संस्कृति
जहाँ विराट रूप लेते
जलती ' अमर जवान ज्योति' जहाँ
वह तो 'इंडिया गेट' है !!

अनन्य

शैल अग्रवाल

चमकते लाल रंग के बड़े से बैनर पर सुनहरे अक्षरों में लिखा था 'देश की आजादी की सालगिरह पर भव्य कवि-सम्मेलन का आयोजन' और मंच पर अपने अद्‌भुत व्यक्तित्व को लिए हुए कविराज पैर पटक-पटककर चिल्ला रहे थे, 'कविता को मनोरंजन मत कहो। यह एक गंभीर विषय है। मैं कभी नही मरुँगा, क्योंकि मैं कोई ऐसा काम नहीं करुँगा। अरे आजादी के लिये जेल जाने वाले वे कोई और लोग होंगे। हमने तो देश के लिये नाखून तक नहीं कटवाया फिर भी फूलों के हार पहने हैं। सीधे मंत्रालय तक गए हैं।'

गरम पिघलते शीशे-सा हर शब्द सामने बैठी शुभी के कानों से उतर हृदय की चमड़ी को फफोलता जा रहा था। अचानक वेदना असह्य हो गई और टप-टप रिसते आँसुओं पर तरस खाकर पलक प्रहरियों ने उन्हें मुक्त कर दिया।

'यह क्या शुभी, वक्त, बेवक्त, यूँ ही रोने लग जाती हो' ऐसे ही किसी क्षण में आदित्य ने उससे कहा था 'मुझे किसी दिन तुम्हारे सर के अन्दर घुसकर इस लूज टैप का वाशर बदलना पड़ेगा।' और अपनी छोटी सी, सुन्दर सी नाक सुड़कती-पोंछती शुभी बोल पड़ी थीं 'पर जनाब ऐसी रिंच कहाँ से लाएँगे?'

अगले दिन जब राष्ट्रीय वायु-सेना का विमान आदित्य को कर्तव्य पथ के अनजाने कुरुक्षेत्र में ले जा रहा था, शुभांगी उसे हवाई-अड्डे पर छोड़ने आयी थी। आदित्य का भोला-भाला चेहरा और चमकती बड़ी-बड़ी आँखें, दोनों ही बहुत उदास लग रहीं थीं उसे। आदित्य की आँखें बड़े प्यार से शुभी को देखे जा रही थीं मानो कह रही हों, शुभी, मेरी तरफ से परेशान मत होना। मैं अपना पूरा ध्यान रखने की कोशिश करुँगा, तुम भी मेरी ख़ातिर अपना पूरा-पूरा ध्यान रखना। मैं जल्दी ही लौट आउँगा, वगैरह-वगैरह। पर वह मुँह से कुछ भी तो नहीं कह पा रहा था। वैसे भी ऐसे मौकों पर अक्सर आदित्य के होंठ सिल जाते थे और आँखें बोलने लग जाती थीं क्योंकि उन्हें पता था कि शुभी उन्हीं की बातें सबसे ज्यादा सुनती और समझती है।

आदित्य की काली पुतलियों में अँधेरा घिरा हुआ था मानो उनकी चमक का स्विच किसी ने बन्द कर दिया हो। शुभी की पसलियों के ऊपर कुछ चटका और गले की छोटी सी नस, चिड़िया के पंख-सी फड़फड़ाने लगीं। आदित्य इस सिग्नल को भलीभाँति पहचानता था। उसने शुभी के हाथ बहुत प्यार से अपने हाथों में लिए, चूमे और फैली हथेलियों पर जेब से निकाल कर एक पैकेट रख दिया।

आदित्य कब घूमा, गया, शुभी को कुछ याद नहीं। याद है कि बस उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा था - यह आदित्य हाथ पर हाथ क्या रख गया... कहीं वहीं तो नहीं जिसका माँ पिछले तीन वर्षों से इन्तजार कर रहीं हैं? सुबह ही तो कह रहीं थीं 'जवानी में औरत और मर्द का सिर्फ एक ही रिश्ता दुनिया को समझ में आता है। यह दोस्ती और प्यार की बातें कोई नहीं समझता। कुँवारी लड़की की इज्जत कच्चे घड़े-सी बड़ी सम्भाल कर रखनी पड़ती है बेटी।' कितनी खुश होंगी माँ जब उन्हें पता चलेगा... और झटपट काँपती उँगलियों से शुभी ने गुलाबी कलियों वाले कागज में सुन्दरता से लिपटे उस रहस्य को दो ही सैकेन्ड में खोल डाला। सामने एक छोटी सी रिंच बहुत ही नज़ाकत और प्यार के साथ रुई के बादलों की कई-कई तहों में धँसी लेटी थी और उसपर लिखा हर शब्द मानो हाथ बढ़ा-बढ़ाकर शुभी को बाँहों में भर लेना चाहता था... 'जल्दी ही लौटकर मिलता हूँ।' साथमें एक नीला कागज भी तो था... 'शुभी, अपने प्यार के सारे मोती तुम्हारे पास छोड़े जा रहा हूँ। आँखों से टपका-टपका कर इन्हें बहा मत देना। लौटकर पूरा हिसाब लूँगा। इसलिये वाशर जब भी ढीला हो जाए तो कस जरुर लेना। जाने से पहले बस इतना काम तुम्हें सौंपता हूँ... तुम्हारा अपना आदित्य।'

यह काम तो तुम्हारा था आदित्य। तुम्हारी यह मोतियों की माला तो वर्षों से मेरे अंतःस्थल को सजाये हुये है। भला इसे कैसे मैं बिखरने दूँगी? हाँ इतना ज़रूर है कि तुम जब तक आओ, यह इकलड़ी माला शायद सतलड़ी और अठलड़ी हो जाए। माला सतलड़ी क्या सहस्त्र-लड़ी होती चली गयी। रुमाल निकालने के लिये शुभी का हाथ पर्स में गया तो वहीं रिंच उसके हाथ में आ गयी। शुभी मुस्कुरायी और उसे फिर से वैसे ही सँभालकर वापस रख दिया। शुभी के आँसू अपने आप ही रुक गये। यह आदित्य ही तो है जो हमेशा पर्स में बैठा उसके संग-संग घूमता रहता है।

'अब मैं अपने वक्तव्य को इन चन्द पंक्तियों के साथ यहीं पर समाप्त करता हूँ', नेता जी हाथ जोड़कर बोले, 'शहीदों की मजारों पर लगेंगे हर बरस मेले/वतन पर मिटने वालों का यही आखिर निशाँ होगा।' पूरा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज गया। बाहर निकलने की ठेलपेल में लोग साधारण शिष्टता तक भूल चुके थे। अब क्या रक्खा था जिसके लिये वे रुकते। गाना-बजाना, खाना-पीना, सब कुछ तो हो चुका था। शहीदों की मजारों पर लगेंगे हर बरस मेले, बस ये शब्द ज़रूर कानों में गूँज रहे थे, पर शुभी का मस्तिष्क कुछ भी तो नहीं ले पा रहा था। एक क्षण के लिए भी तो किसी ने याद नहीं किया, उन शहीदों को जिन्होंने आजादी के पहले या आजादी के बाद देश के लिए अपनी जानें कुर्बान की थीं। हाँ, यह उत्सव ज़रूर हर साल मना लिया जाता है। लोग ऐसे ही सज-धज कर आते हैं। ऐसे ही खाते-पीते और गाते बजाते हैं। तरह-तरह के वायदे करते हैं और बाहर जा कर सबकुछ भूल जाते हैं। वर्षों से यही सिलसिला चल रहा है। शुभी भी आती है... न जाने किस मजबूरी से खिंचकर... यह उसके आदित्य का प्रिय उत्सव समारोह जो था।

उसे अपने देश से, अपने लोगों से बहुत प्यार था। सारी दुनिया उन शहीदों को, उसके आदित्य को भूल सकती है पर शुभी नहीं। भूलने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी क्योंकि आदित्य सोते-जागते हमेशा उसके साथ ही तो रहता है। याद है उसे आदित्य का वह पहला-पत्र जो जाने के दस दिन बाद आया था। एक-एक अक्षर आज भी हृदय पर प्रेमांकित है। यह पहला और आखिरी पत्र ही तो था जो आदित्य अपनी सत्ताईस साल की कुँवारी जिन्दगी में शुभी को लिख पाया था। और आज यह पत्र ही तो शुभी की मरुस्थल जैसी प्यासी जिन्दगी में रखा अमृत-कलश है... उसका आधार-स्तंभ हैं। वह अक्सर शुभी को छेड़ते हुए कहता था, 'शुभी जब तुम शादी के बाद मैके जाया करोगी ना तो मैं तुम्हें रोज ही पत्र लिखने की बजाय शाम को फोन किया करूँगा और तुम भी बिना कुछ बोले बस फोन उठा लिया करना। हम दोनों एक दूसरे की बात खुद ही सुन और समझ लिया करेंगे। देखो इस तरह चुप रहकर बात करने के दो फायदे हैं। एक तो तुम न तो मुझसे लड़ पाओगी और न मुझे डाँट पाओगी...और ना ही अपने फोन का बिल ही ज्यादा बढ़ेगा। वैसे भी यदि तुम चाहो तो इस तरह से बचाये पैसों से मुझे एक मनचाहा तोहफा खरीदकर दे सकती हो।'

मुस्कुराती शुभी बस उसे देखती ही रह जाती। यह जो इतनी बक-बक करने वाला, इतना संजीदा-सा आदित्य है... यह जो हमेशा प्यार और हँसी के फव्वारे छोड़ता आदित्य है... इसके साथ जीवन एक छत के नीचे कैसा होगा? और फिर खुद ही डर जाती। इतना सुख तो ज़िन्दगी में किसी को नहीं मिलता। उसे आदित्य को इतने प्यार से नहीं देखना चाहिए। कहते हैं अपनों को अपनी ही नज़र लग जाती है। और अनायास ही वह मन ही मन आदित्य के लिए भगवान से प्रार्थना करने लग जाती। तब आदित्य आकर उसे उसकी प्रेम-समाधि से बाहर लाता। 'अरे भई, कहाँ खो गई तुम? मैं तो यूँ ही मज़ाक कर रहा था। अच्छा बाबा, सुबह, शाम, दुपहर, रात, रोज चार-चार पत्र लिखा करूँगा, पर पहले शादी तो होने दो।' और दोनों ही हँस पड़ते।

आज भी जब शाम के पाँच बजते हैं, बिना घंटी का इंतजार किए ही शुभी फोन उठा लेती है क्योंकि उसे पता है कि आदित्य कहीं भी हो, उन क्षणों में... उस एक पल में उसके पास ज़रूर आता है। कभी-कभी तो गंगूबाई आकर फोन उसके हाथ से लेकर वापस रखती है।

' किस्से बातें कर रही हो आप बिब्बीजी। खाना कब से पड़ा-पड़ा अपनी किस्मत को रो रिया है। कब से बुलाती हूँ मैं आपको। उन्ने तो फून कबका रख दिया। मैंने भी कान पे लगा के सुना था, फून से तो कोई आवाज नहीं आती।'

शुभी यंत्रवत्-सी उठकर खाने की मेज़ पर जा बैठती। उसके अन्दर की आवाजें चुप होने का नाम ही नहीं लेतीं। 'शुभी. . ' आदित्य की आवाज मानो समय के साथ और मीठी होती जा रही थी। ' खाना खा लो, शुभी। देखो, तुमने सुबह से कुछ भी नहीं खाया। इस तरह से तो मुझे बहुत ही तक़लीफ होती है।'

'खाती हूँ, आदित्य, खाती हूँ।' शुभी खुद से बोल पड़ती और जल्दी-जल्दी एक के बाद एक निवाला मुँह में डालने लग जाती। अब तो उसके आँसुओं का स्रोत भी सूख चुका है। आदित्य की अनन्त प्रेम-माला उसे चारों तरफ से जकड़कर सम्भाले हुए जो है और आदित्य की दी हुई रिंच ने पिछले तीस साल में उसके सारे ही स्क्रू कस दिए हैं।

पाषाण-प्रतिमा सी शुभी चौके में अपनी खाली प्लेट रखने आती तो भगवान की अल्मारी उसे अपने पास बुला लेती। वहाँ पर मेजरिंग टेप आज भी जैसा का तैसा ही रखा है और उसके बगल में आदित्य की वर्दी में खिंची हुई वह फोटो भी। सबकुछ ही तो ज्यों का त्यों है। मानो मौत ने आदित्य को अमरत्व दे दिया हो। आज भी वह वैसा ही बाँका और सजीला था। उम्र की धूप तो सिर्फ शुभी के बालों पर ही बिखर गई थी।

'शहीद, फ्लाइट लेफ्टिनेन्ट, आदित्य राय को भारत सरकार मरणोपरान्त परमवीर चक्र प्रदान करती है।

'शुभी को कल जैसी याद है जब भारत-सरकार का वह पत्र आया था। आगे उसमें लिखा था कि उनकी इच्छानुसार उनका व्यक्तिगत सामान शुभांगी मित्रा को सौंपा जाता है। और साथ के पैकेट में आदित्य की वरदी के साथ एक चाभी का गुच्छा, थोड़ी सी चेंज, एक कंघा, एक रुमाल और यही मेजरिंग टेप था। शुभी को अच्छी तरह से याद है वह इक्कीस सितम्बर की शाम। आदित्य की छब्बीसवीं सालगिरह थी। सुबह-सुबह ही उसे भारतीय वायुसेना से नियुक्ति-पत्र मिला था। और उसी दिन एक सुन्दर से पैकेट में, एक छोटे से पत्र के साथ यह मेजरिंग टेप शुभांगी आदित्य को दे आई थी। कितना हँसे थे वह दोनों साथ-साथ जब आदित्य ने वह पत्र पढ़ा था। उसकी नाक दबाते हुए वह बोला था, 'तो, मेमसाहब हमें बिल्कुल ही बुद्धू समझती हैं। ठीक है... जरा शादी हो जाने दो सबकुछ समझ में आ जायेगा।' पत्र भी तो पूरा शोखी और शरारत से भरपूर था, आदित्य की शोख और शरारती शुभी की तरह।

' मेरे प्यारे (भूल-सुधार) बुद्धू, लेफ्टिनेन्ट साहब,

जैसा कि आपकी हरकतों से सिद्ध हो चुका है, आप किसी भी बात या परिस्थिति की गहराई और ऊँचाई को समझने में सदैव ही असमर्थ सिद्ध हुये हैं अतः आपको यह मेजरिंग टेप प्रदान किया जाता है। भविष्य में आप जब भी हमारे आगे आएँ तो इसे साथ लेकर ही आयें, ताकि आपको पता लग सके कि आपके हर वक्त देर से आने से या कभी-कभी न आने से, हमें कितनी तक़लीफ होती है और हम कितने दुखी हो जाते हैं। पुनःश्च आपके आने से कितने खुश भी। इसलिये रोज ही, आपकी उपस्थिति अति अनिवार्य।

आपकी अपनी कमांडर-इन-चार्ज'

उसके बाद तो आदित्य हमेशा उस टेप को गले में डालकर ही घर में घुसता था। कितनी बार शुभी ने भी कहा था, रहने भी दो आदित्य, वह सब तो बस यूँ ही लिख दिया था। एक दिन तो हँसकर माँ भी पूछ बैठी थीं ' आदित्य यह कोई नया फैशन है क्या बेटा?'

और तब आदित्य ने मुस्कराते हुये कहा था, 'यह फैशन नहीं, ज़रूरत है, आन्टी। वैसे कोई खास बहादुर तो हूँ नहीं। क्या पता कब ये एयर-फोर्स वाले नौकरी से ही निकाल दें। सोचा है कि यदि ऐसा हुआ तो

हम एक दर्जी की दुकान खोल लेंगे। वैसे ये दर्जी भी अच्छा पैसा कमा लेते हैं। और फिर इस काम के और भी तो कई प्यारे-प्यारे फायदे हैं।' और उसने शुभी की तरफ देखकर शरारत से आँख मार दी थी। शुभी के गुलाबी गालों की रंगत माँ से भी न छुप पाई थी। 'तुम बच्चों की तो कोई भी बात मेरी समझ में ही नहीं आती' कहकर माँ तो उठकर अन्दर चली गई थीं पर आदित्य ने उसे कसकर बाहों में जकड़ लिया था 'थोड़े दिन आ न पाउँगा, कमांडर साहिबा।' और उसकी गहरी काली आँखें शुभी से भी ज्यादा उदास हो गई थीं।

उसके बाद आदित्य नहीं वह डिब्बा आया था, आदित्य के पार्थिव-शरीर को समेटे हुए। उसमें लेटा आदित्य बिल्कुल वैसा ही लग रहा था, जैसा गया था। चेहरे पर एक खरोंच तक न थीं। सुनते हैं, दुश्मन के दस टैंकों पर बमबारी करने के बाद अचानक उनकी एक गोली आदित्य के जहाज के पंख को बींध गई थी। अपनी सूझ-बूझ और कुशलता के साथ आदित्य एक पंख पर ही जहाज को अपनी सीमा तक उड़ा लाया था। जहाज भारत की जमीन पर आकर ही गिरा था, मानो जाते-जाते माँ के पैर छूकर गया हो। इस तरह की, सभी छोटी-बड़ी और मीठी बातों का आदित्य बहुत ध्यान रखता था। जब मृत आदित्य को जहाज से निकाला गया था तो टेप उसकी अन्दर वाली जेब में ही रखा मिला था। वस्तुतः उसे पूरा भरोसा था कि वह जल्दी ही शुभांगी से मिलने आयेगा। इन चन्द, गुजरे दिनों की लम्बाई और गहराई दोनों ही उसने अच्छी तरह से नाप ली थी और सबकुछ अपनी शुभी को सुनाने के लिये वह बहुत बेचैन था। पर टेप तो शुभी के पास अलग पैकेट में ही आया था मानो आदित्य का भेजा हुआ सम्पूर्ण और अन्तिम प्रेम-पत्र हो।

शुभी के हाथ स्वतः ही अलमारी की तरफ बढ़ गये और उसने वह पत्र और टेप दोनों ही उठा लिये... पढ़ने लगी। यह उसकी रोज की दिनचर्या थीं। आखिर यही तो उसकी एकमात्र निधि थी और था उसके बिखरते जीवन का आधार स्तंभ... उसके आदित्य का भेजा हुआ पहला और अंतिम सम्पूर्ण प्रेम-पत्र।

'मेरी शुभी,

आज सुबह से तुम बार-बार मेरे सामने आकर उदास सी खड़ी हो जाती हो और हठ करने लगती हो कि आदित्य मुझसे बातें करो। मन तो मेरा भी यही कर रहा है। जानती हो शुभी, मैं इस समय क्या सोच रहा हूँ? मैं देख रहा हूँ कि जाड़े की नरम मीठी धूप मेरे पैरों पर बिखरी हुयी है और मैं माँ के साथ घर के वरांडे में बैठा गरम-गरम पकौडियाँ खा रहा हूँ। पकौड़ियाँ खत्म होते ही माँ आवाज दे रही हैं, आदित्य की बहू थोड़ी पकौड़ियाँ और बना लो। आज पकौड़ियाँ बहुत स्वाद की बनी हैं। पर तुम्हें तो यह सब कुछ आता ही नहीं। जल्दी से पकौड़ियाँ बनाना सीख लो न शुभी। अरे, तुम तो गुस्सा होने लगीं, मैं तुम्हारे कान गरम होते देख रहा हूँ। चलो मैं तो तुम्हारे लिये यह सब खाना-पीना छोड़ भी दूँ पर माँ को कैसे समझाउँगा? तुम ही सोचो शुभी बिना पकौडियों के माँ का क्या होगा? उससे भी ज्यादा मेरा-तुम्हारा क्या होगा? कुछ तो समझो शुभी, जल्दी से पकौड़ियाँ-शकौड़ियाँ, रोटी-वोटी सब कुछ बनाना सीख लो न। बहादुर छुट्टी पर भी तो जाएगा... वैसे भी तुम्हारे हाथ का स्वाद बहादुर की रोटियों में कहाँ? अरे तुम तो सच में गुस्से होने लगीं। मैं और बहादुर तो होंगे न तुम्हारी मदद के लिये। और हाँ याद आया, तुम्हारे बेलनों की मार से बचने के लिये मैंने एक हैलमेट का भी इन्तज़ाम कर लिया है। सच शुभी लगता है कल का सूरज हमारी सब खुशियाँ लेकर आएगा। कल की किरणें निश्चय ही हमारी सरहद की शैल-मालाओं के लिये विजय-हार होंगी और देखो इस कल के इन्तज़ार में यह सुरमयी संध्या और भी सिन्दूरी हो गयी है, बिल्कुल तुम्हारी तरह। इन सब ढेर सारी खुशियों को बाँहों में समेटे मैं जल्दी ही तुम्हारे घर आ रहा हूँ... तुम्हें सब कुछ लौटाने... तुम तैयार तो हो न?

तुम्हारा अपना आदित्य'

झिलमिल यादों की सितारों वाली वह काली-सियाह चूनर ओढ़े शुभी आज भी, वैसे ही, जीवन के उसी मोड़ पर तैयार खड़ी है क्योंकि उसे पता है कि उसका आदित्य ब्रह्माण्ड के किसी भी कोने में हो,

एक दिन उसे लेने अवश्य आएगा। वही तो है उसकी सूनी माँग सी सपाट जिन्दगी का सौभाग्य। उसकी आत्मा पर अंकित अनन्य प्रेम का अमिट सिन्दूर। इसी आभा से सज-सँवरकर तो वह चिर-सुहागन हुई है। एक हाथ में पत्र और दूसरे से टेप को होठों से लगाए खड़ी शुभी को देखकर, गंगूबाई बड़बड़ाने लग जाती है, 'लगता है बिब्बीजी का तो पूरा का पूरा दिमाक ही सरक गया दिखे है। वैसे भी पचास की तो होने आई ही होंगी। कहते हैं पचास तक पूरे दिमाक पर नजला उतर आवे है। गीता और कुरान के सदके करते तो हमने बहुतों को देखा और सुना है... पर तौबा-तौबा... यूँ कागज और मुए टेप को चूमते तो आज तक किसी को भी नहीं देखा।'

उस बिचारी को क्या पता कि अपने इस तीस साल पुराने प्रेम-पत्र को शुभी अभी तक जी भरकर पढ़ भी नहीं पाई।

बूँदें

आशमा कौल

तुमने तो बरसात में
देखी होंगी बूँदें गिरते
पर मैंने गिरते
देखा है बूँदों को
पतझ में भी;
पतझ की बूँदें
जो बह के सूख जाती हैं।
सीमित से दायरे में
एक पल का
उठा हुआ तूफ़ान
थम जाता है;
भीतर किसी कोने में
छो जाता है
शुष्क अवशेषों को।
हमेशा सोचा करती हूँ
क्यों ये बूँदें बह कर
सूख जाया करती हैं !
क्यों यह तूफ़ान उठ कर
थम जाता है !
शायद इसलिए कि ये
बूँदें बरसात की नहीं
पतझ की हैं।
बरसात की बूँदे, गिर कर
हरापन बिखेर देती हैं
पर ये बूँदें सूखे
और पिचके गालों पर
छो जाती हैं
पीले निराशा के धब्बे।

कन्या रत्न का दर्द

डा. प्रेम जनमेजय

आप यह मत सोचिये कि मैं कोई साधु संत या फिर आधुनिक बाबा-शाबा हो गया हूँ और आप को माया मोह से दूर रहने की सलाह देकर स्वयं माया बटोरने का जाल बिछा रहा हूँ तथा इस कर्म में आप को कन्या रत्न के दर्द को समझने का प्रवचन दे रहा हूँ। न ही मैं प्लूटो के ग्रहों के चक्कर से दूर हो जाने पर कन्या जैसे किसी रत्न को धारण करने की सलाह दे अपना व्यवसाय जमा रहा हूँ । मैं ऐसा क्यों और क्या कर रहा हूँ, आप भी जानिये ।

उस दिन मैं जल्दी में था। मुझे अस्पताल पहुँचना था। अस्पताल की ओर जाने वाला हर व्यक्ति जल्दी में होता है, यह अलग बात है कि अस्पताल वाले कभी जल्दी में नहीं होते। आप का हाथ टूट गया है, आप दर्द से कराह रहे हैं और आप को लग रहा है कि आप से अधिक पीड़ित व्यक्ति इस दुनिया में कोई और नहीं है। आप उम्मीद करते हैं कि आप को पीड़ा में देखकर डॉक्टर आपकी माँ की तरह चीखता हुआ आप से लिपटकर कहेगा, हाय, मेरे बच्चे मरीज़ को क्या हो गया! तेरी यह हालत किसने कर दी, मरीजवा? यह कहते हुए डॉक्टर की आँखों से आँसू बहेंगे और वह सारा काम छोड़कर आपकी सेवा में लगा जाएगा। पर उसे जल्दी नहीं है। उसे डॉक्टर-सखी से बतरस का आनंद उठाना है और नर्सों के सौंदर्य पर रिसर्च करनी है। डॉक्टर ही क्या, आप पाएँगे कि अस्पताल का हर कर्मचारी अपने में व्यस्त है। आपको देखने की किसी को जल्दी नहीं है। आप अधिक जल्दी मचाएँगे तो वह आपके पेट में कैंची छोड़कर पेट सिल देगा। आपकी हाय-तोबा अस्पताल वालों के लिए दूरदर्शन के कार्यक्रमों की तरह है। यदि आप किसी के द्वारा प्रायोजित हैं तो सारा अस्पताल रुचि के साथ देखेगा, नहीं तो आप कृषिदर्शन हो जाएँगे। कुछ करने को नहीं होगा कि आपको देख लिया जाएगा।

मेरा हाथ नहीं टूटा और न ही मैं मरीज़ होने के कारण जल्दी में था। जल्दी का कारण मेरा मित्र था। वैसे हुआ उसे भी कुछ नहीं था, जो कुछ होना था वह उस की पत्नी को होना था। वह मेरा मित्र है और सहकर्मी भी। दोपहर को मित्र के घर से फ़ोन आया कि उस की पत्नी की तबीयत ठीक नहीं है इसलिए उसे अस्पताल ले जा रहे हैं। उस की पत्नी माँ बनने वाली थी और वह बाप बनने वाला था। फ़ोन सुनते ही उस के चेहरे पर प्रसव-पीड़ा का दर्द छा गया। यह दर्द सुख का कारण भी बनता है और दुख का कारण भी। वह दो लड़िकयों का पिता है।

वह मुझे अस्पताल की सीढ़ियों पर मिला था। उस का चेहरा अब भी प्रसव-पीड़ा लिए था। मैंने उत्सुकता दिखाते हुए पूछा, 'क्या हुआ?'

कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई है, कहते हुए उस का चेहरा कोयला हो रहा था। उस के चेहरे पर पराजित नेता की मुस्कान थी जो जनता को सामने पाकर विवशता में आती है या फिर विदेशी निवेशक का न चाहते हुए भी विरोध करने के बाद विजयी के रूप में खिसयाती है। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं नवजात-शिशु के आगमन की बधाई दूँ या सहानुभूति प्रकट करूँ।

'दोनों ठीक हैं न?'

'हाँ, ठीक हैं। वीतरागी-योगी के स्वर में वह बोला, तू चल, माँ भी ऊपर है, 46 नंबर कमरा है. . .सेकंड फ्लोर पर. . .मैं अभी आ रहा हूँ। और वह भारत के दलित वर्ग-सा निर्जीव अपने को आगे धकेलने लगा।

मुझे देखकर मित्र की माँ के चेहरे पर ऐसी मुस्कान छाई जैसे फ़ोटोग्राफ़र ने किसी मुर्दे से कहा हो, स्माइल प्लीज़! और वह मुस्करा दिया हो। उन्होंने कहा, लक्ष्मी आई है! पर लगा जैसे लक्ष्मी गई है।

मैं माँ के रूप में उस हौवा के सामने नतमस्तक हो गया जो एक और हौवा के कारण पीड़ित थी। धन्य है ऐसी व्यवस्था जिस में औरत-औरत की दुश्मन बनने को विवश है। हे महान पुरुष, तू धन्य है जिसने औरत की आँखों के पानी का गुणगान किया और औरत की महानता को रोने से सिद्ध किया।

आजकल वैज्ञानिकों ने ऐसी खोज तो कर ही ली है जिस से भ्रूणावस्था में ही पता चल जाता हैं कि लड़का होने वाला है या लड़की। धन्य हैं ऐसे वैज्ञानिक जिन्होंने हौवा की पीड़ा को समझा और उसका उद्धार किया। हमें उतनी ही औरतें चाहिए जो घर की चक्की में पिसती रहें। फालतू औरतों का दिमाग़ फालतू कामों में लगकर वे हौवा से हौआ बनेंगी, पुरुष को भयभीत करेंगी।

शब्दकोश के अनुसार हौवा शब्द स्त्रीलिंग है और वह सौंदर्य तथा कोमलता से पूर्ण है। परंतु हौवा जब पुल्लिंग होती है तब वह हौआ बन जाती है। हौआ डराने के काम आता है। जो बच्चे दूध नहीं पीते हैं, अच्छे बच्चे नहीं बनते हैं, हौआ उन्हें डराता है। हौवा जब तक स्त्रीलिंग रही है, सौंदर्य और कोमलता की प्रतिमा बनी रहती है, पुरुष के चरणों की दासी रहती है, घर की रानी बनी रहती है, पुरुष निश्चिंत होकर अपनी मर्दानगी का सुख भोगता है। परंतु अब हौवा जागती है, पुल्लिंग होती है, आदम से आगे बढ़ने का स्वप्न देखती है, तब वह हौआ बन जाती है। जब भी हौवा आदम बनने को होती है, पुरुष का सिंहासन डोलने लगता है।

आजकल राधेलाल जी का सिंहासन डोल रहा है। पिछले रविवार उन के घर गया तो दरवाज़ा खोलते ही किसी आतंकवादी की तरह उन्होंने प्रश्न दाग दिया, 'तुम...तुम ही बताओ आजकल के ज़माने में पत्नी का क्या फ़र्ज़ है? मैं आम आदमी-सा चकित ही था कि उन्होंने स्वयं उत्तर दे डाला, उसका यही फ़र्ज़ है न कि अपनी गृहस्थी ठीक-ठाक सँभाले। घर के मोटे-मोटे काम. . .नाश्ता तैयार करना, खाना बनाना, बच्चों को स्कूल भेजना, झाड़ू-पोंछा करना, बर्तन साफ़ करना, थोड़ी-बहुत सिलाई करना और घर की देखभाल करना। अब यह काम गृहिणी नहीं करेगी तो क्या गृहणा करेगा? आदमी शादी क्यों करता है. . .उसे सुख मिले इसलिए न?'

मैं समझ गया कि उन के घरेलू हालत ठीक नहीं हैं। परंतु एक अच्छे पड़ोसी की तरह उन के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करते हुए अनजान होकर मैंने पूछा, 'पर हुआ क्या, राधेलाल जी?'

'होना क्या है. . .मैं दफ्तर से थककर आया और इन महारानी जी से बोला कि कुछ चाय-नाश्ता दे दो, तो जानते हैं महारानी जी ने क्या कहा? बोली, मैं भी थकी हुई हूँ, आज चाय तुम पिला दो। शिव! शिव! शिव! इतना घोर अनर्थ घर का स्वामी चूल्हा-चौका करे? बाहर जाकर थोड़ा-बहुत कमा क्या लाती है, हम पर हुक्म चलाने लगी... अपने पति पर! पहले की औरतें कितना काम करती थीं. . . और आजकल, थोड़ा बहुत पढ़-लिख गईं. . .कमाने लगीं. . .तो सारी गृहस्थी भूल गईं. . .चाय बनाने को कहो तो सिर में दर्द होने लगता है।'

राधेलाल जी का रक्तचाप महँगाई की तरह बढ़ता जा रहा था और मैं वित्त मंत्री-सा विवश खड़ा था। राधेलाल जी की मूँछ को नारी जाति ने ललकारा था, आज उन्होंने अपने तरकस के सारे तीर खोल लिए थे। वह सत्संग माला उठा लाए और काँपते हाथों से उसे खोलते हुए जैसे किसी महामंत्र का जाप करने लगे। 'जानते हैं इस किताब में महापुरूषों ने क्या लिखा है. . .नारी नरक का द्वार है. . .पति की आज्ञानुसार चलने का व्रत रखने वाली स्त्री कभी दुखी नहीं होती। पति की आज्ञापालन करना स्त्री का परम धर्म है। वह इतना ही कर ले तो स्वर्ग जाती है. . .और यह स्त्री। यह तो नर्क का कीड़ा बनेगी।"

मुझे उस दिन राधेलाल के रूप में महान पुरुष के दर्शन हुए। हे राधेलाल, तू महान् है। तू नारी को आज्ञा देता है जिस से तेरी आज्ञा का पालन करके वह पतिव्रत धर्म का पालन कर सके। तू अपने कोमल हाथों से कुलटा नारी की देह को पीटता है, जलाता है, जिस से उसे स्वर्ग मिले। तूने ही नारी को बिलदान का मार्ग दिखाया। तूने नारी को महान बनाने के लिए उसे वनवास दिया, सती बनाया, शिला बनाया, क्या-क्या नहीं बनाया। कितना निर्माण किया है तूने भारतीय नारी का! तू त्याग के इस पथ पर खुद नहीं चला, इसे नारी के लिए त्यागा, तेरा त्याग महान है। हे पुरुष जाति! तू भी राधेलाल की तरह जाग। देख, ज़माना कितना बदल गया है। एक वह ज़माना था कि पति नारी से कह दे कि तुझे अग्निपरीक्षा देनी है तो वह हँसते-हँसते चिता पर चढ़ जाती थी और आजकल चाय का पानी चढ़ाने को कहकर तो देखें।

हे आदम, तू जाग और हौवा को हौआ मत बनने दे। ऐसी व्यवस्था बना कि हौवा हौआ की दुश्मन बनी रहे। तू दहेज के सांप को पाल, नारी को ईश्वर-शक्ति की अफीम खिला और उस की आँखों पर पतिव्रत धर्म का चश्मा चढ़ा तथा खुद चैन की बाँसुरी बजा। तू नारी को रत्न बनाकर अपनी शोभा बढ़ा, उसे क्रय-विक्रय की वस्तु बना और यदि वह रत्न न बने तो उसे परीक्षा की अग्नि में जलाकर खरा सोना ही बना ।क्योंकि तू पुरुष है, धन्य है!

अस्तित्व

डा . दामोदर ख से

एक सुंदर से गुलाब को देखते ही
होंठ सुगबुगाने लगते हैं
और पलक झपकते ही
काँटा मेरे होठों को सी जाता है

दर्द और मुक्ति

डा. दाऊजी गुप्त

इससे ब ा दर्द पहले कभी नहीं हुआ
दर्द जो अपनों को देख कर होता था
वह जो दिन रात के साथी थे
मिलने पर
'इस समय ज़रूरी काम से जा रहा हूँ'
'अच्छा मैं खुद आऊँगा'
कह कर सटक जाते थे
मुझे हाज़िरी पसन्द नहीं है
पर जो रोज मात्र हाज़िरी के
उद्देश्य से आते थे
वह भी
फोन करने पर
बात तक करना टाल जाते थे
मैं समझ सकता हूँ
एक आदमी की मज़बूरी
कि देश का काम करने की
उसकी सीमाएँ होती हैं
मैं समझ सकता हूँ
एक परिवार का कष्ट
जो एक मात्र पोषक और
कमाने वाले के
गिरफ़्तार होने पर होती है
लेकिन किसी भी व्यवस्था से
बलिदानियों और वीरांगनाओं की भूमि में
इतना भय और आतंक
समझ में नहीं आता।
बचने की प्रवृत्ति समझ में आती है
पर भय समझ में नहीं आता।
सचमुच इतना भारी दर्द पहले कभी नहीं हुआ
दर्द जो हर दरवाज़े पर
मेरा कदम प ने के पहले
ही उग जाता था
और मेरे ही कदमों में
दरवाज़ा खुलते ही चुभ जाता था।

दर्द इस बात का नहीं था
कि मेरे अपने और अपने दोस्तों
के बारे में
कुछ भ्रम की दीवारें थीं
जो ढह गईं।
दर्द इस बात का था
कि मानव मूल्यों की रीढ़
अगर इतनी अधिक टूट गई
तो फिर वह मूल्य ख े कैसे होंगे
जिनके सहारे
इस देश का इतिहास ख ा हुआ है
हम उसे कौन-सी बैसाखी देंगे।
दर्द जो बाढ़ के पानी की तरह
स कों पर फैल गया है
मकानों में घुस आया है।
भावनाओं की मीनार पर ख े होकर
जितनी दूर देखता हूँ
दर्द ही दर्द नज़र आता है
दर्द के अलावा कुछ नहीं
लगता है शताब्दियों से
लोगों ने फुलवारियाँ लगायी थीं
मकान सजाये थे, पुस्तकालय बनाये थे
और खूबसूरत कल्पनाओं के शहर बसाये थे
वह सब इस बाढ़ की भेंट हो गये
सारे अखबारों में एक ही खबर है
इसलिये उन्हें पढ़ना बंद कर दिया है।
रावण के मायावी युद्ध की तरह
एक दर्द के कम होने पर
हज़ारों दर्द सामने ख े हो जाते हैं
अनगिनत असंख्य-अपरिमेय।
अच्छा ही हुआ
मैं आज गिरफ़्तार हो गया
कम से कम
जेल में रोज़
मुक्त हो कर
भाषण तो दे सकूँगा।

अभाव

विष्णु प्रभाकर

ज्यों-ज्यों प्रोफेसर वर्मा की तृष्णा बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों अभाव की रेखा भी गहरी होती जा रही थी। रसवादी प्रोफेसर और रस-सागर के बीच एक अभेद्य दीवार थी, जिसके पार वे रस के लहराते समुद्र को देख तो सकते थे, पर उस तक पहुँचना असंभव था। वह उनके लिए मृगतृष्णा बन गया था। इसी कारण अनजाने में एक नई प्रवृत्ति उनमें जन्म ले रही थी। वे अपने पास-प ोस के तथा सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का सूक्ष्म अध्ययन करने लगे थे। हर आदमी के साथ दुःख-सुख लगा रहता है इसलिए, जैसे ही वे किसी के दुःख को खोज निकालते, अनजाने में ही उनका हृदय उल्लास से भर उठता। परन्तु दुनिया तो दुनिया है। विचित्रता उसका गुण है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता कि प्रोफेसर किसी व्यक्ति में दुःख का लेश-मात्र अंश भी न ढूँढ पाते। तब उसको हँसते देख कर उनकी छाती में छुरियाँ चलने लगतीं और वे लम्बी साँस खींच कर कहते, 'आह ! कितना सुखी मनुष्य है।'

इधर इसी तरह की एक घटना ने उन्हें त्रस्त कर दिया था। बात यह थी कि अभी-अभी उनके प ोस में एक नया परिवार आ बसा था। केवल दो व्यक्ति थे, पति और पत्नी। दोनों सुंदर, सुसंस्कृत और मधुर-भाषी। सदा हँसते रहते और जब किसी से बोलते, तो मुख से मानो फूल झ ते। देखते-देखते वे प ोस की चर्चा का विषय बन गये। हर गोष्ठी में, चाहे वह पुरुष-वर्ग की हो अथवा नारी-वर्ग की, उनकी सज्जनता, विनम्रता और विद्वता की चर्चा ब ी श्रद्धा से की जाती और सब को उनके सुखी जीवन से ईर्ष्या होने लगती। स्त्रियों की सभा में उनकी पत्नी की विशेष सराहना की जाती। युवतियाँ कहतीं, कैसी सुंदर है, गोरा-गोरा रंग, सुआ-सी नाक, काली-कजरारी आँखें और सुडौल शरीर ! जी करता है, बैठे-बैठे देखा करें। और हमेशा हँसती ही रहे है।

'हाँ बहिन ! हमेशा हँसती ही रहे है जैसे फूल झ ते हों और बोली कितनी मीठी है ! जाते-जाते पूछ लेगी, 'कहो बहनि ! क्या बना रही हो।' 'अजी बहिन जी, हमें भी दिखा दो क्या बुन रही हो?' 'ओहो, ब ा सुन्दर हाथ है तुम्हारा।' ऐसे ही सबका मन बढ़ाती रहे है।'

'और बहिन ! एक बार पूछो तो दस बार बताये है। फिर-फिर कर समझावे है। इस तरह बतावे है कि बस मन में उतरता चले जावे है। उस पर सिफत यह है कि ज्यादा बात भी नहीं करे।'

एक साथ कई युवतियाँ उनकी हाँ में हाँ मिलातीं। एक कहती, 'सो तो है ही बहिन !'

दूसरी बोलती, 'हाँ, जी ! ब ी भली है, परमात्मा उसे सुखी रखे !' तीसरी कहती, 'जी करे है बहिन कि सदा उसके साथ रहूँ।' और फिर एक कहकहा लगता। कोई मनचली कह उठती, 'दुर पगली ! उसका मालक क्या तेरी जान को रोवेगा?'

जब हँसी रुकती तो बूढ़ी दादी बोल उठती, 'बहू, मुझे तो उसकी एक बात बहुत प्यारी लगे है।'

'क्या जी?'

'बस हमेशा काम करती रहे है और सब काम करे है। नहीं तो नये जमाने की लुगाई क्या ऐसी ही हैं। बाजार जा है। मगर क्या मजाल जो कभी पत्ता चाटे। सीधी जा है और सौदा ले कर लौट आवे है। घर में बुहारी-झाड़ू, चौका-बासन सब आप करे। काते भी है। कहवे थी, 'माँजी ! कातना मुझे ब ा प्यारा लगे है। घर्र-घर्र में तो जैसे भगवान् गावे हैं। मोहिनी-सी छा जावे है। चक्की भी पीसे है।'

बहू ने अचरज से कहा, 'जी, क्या सच !'

'और क्या झूठ कहूँ हूँ। तेरी तरह ना है। दो हरफ पढ़े और मेमसाब सेज पर जा सोई। और उसे क्या कम सुख है। मालिक पलकों पर रखे है। दोनों जून दोनों जने हवाखोरी को जा हैं जैसे सीता-राम की जो ी हो।'

दूसरी बहू कहती, 'पर माँजी, एक बात है, अभी उसकी गोद सूनी है, उमर तो उसकी काफी हो गयी।'

माँजी जवाब देतीं, 'बहू, देखने में तो लौंडिया-सी लगे है। दिन आएँगे तो गोद भी भरेगी। आज-कल बच्चे जरा ब ी उमर में हो हैं।'

इस तरह जहाँ भी दो औरतें मिलतीं, घर में, मेले-ठेले में, हाट-बाजार में, शादी-गमी में, वहीं उनकी चर्चा आप से आप अनजाने ही चल प ती। प्रोफेसर वर्मा की पत्नी भी सब बातें सुनती थी। वह स्वयं उसकी ब ी प्रशंसक थी क्योंकि उसने अपनी आँखों से अपनी छत से सब कुछ देखा था। उसकी छत से छत मिलती थी। जब प्रोफेसर की पत्नी ऊपर आती, तो कभी-कभी प ोसन से दो बातें कर लेती थीं। पर अभी वे बहुत आगे नहीं बढ़ी थीं। एक तो प्रोफेसर की पत्नी कम बातें करती थी और करती थी, तो साधारण औरतों की बातों में उसे ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी। ल ाई है, ल ाई की वज़ह से जीना दूभर हो गया है। मँहगाई बढ़ रही है, और मँहगाई छो ि ए, पैसा है पर चीज़ नहीं है। खरीज का न जाने क्या हुआ? दियासलाई, मिट्टी का तेल, चीनी, मसाले - इन सबके अभाव में गिरस्ती बस जंजाल बन गई है।

प ोसिन मुस्कराकर कहती, 'बहिन ! यह तो जीवन का एक रस है। अभाव न हो तो भाव को कौन पूछे ! अपनी असलियत का पता आदमी को ऐसे ही जमाने में चलता है।'

प्रोफेसर की पत्नी भी अनायास मुस्करा उठती, 'सो तो तुम ठीक कहती हो बहिन, पर जी को दुःख तो होता ही है।'

'दुःख तो बहिन मानने का है। मानो तो दुःख का अंत नहीं है और मानो तो मौत भी सुखदायी है।'

और फिर प्रोफेसर की पत्नी की ओर देखती और हँस कर कहती, 'पर बहिन दुनिया में रह कर इस मानता से कौन बचा है? वे कहते थे कि दुःख सभी का होता है। पर हाँ, दुःख को दुःख मान कर भी जो उसे सहने की शक्ति रखते हैं उनके लिए दुःख भी सुख हो जाता है।'

प्रोफेसर की पत्नी उसके पति की विद्वतापूर्ण युक्ति का क्या जवाब देती और बात एकदम रुक जाती। कभी बेबी रो उठती, कभी प्रोफेसर पुकार लेते। प्रोफेसर को यह सब पसंद नहीं था। पत्नी जब-जब उसकी प्रशंसा करती, वे अनमने-से हो उठते। कभी-कभी तो चिनचिना प ते। 'छो ो भी उसकी बातें। बनती है।' पर पत्नी को ऐसी कोई बात नहीं दिखाई प ती थी। फिर भी वह सोचा करती थी, शायद ये सच कहते हैं, वरना कोई इतना खुश कैसे रह सकता है। मैं उससे मेल बढ़ाऊँगी तब उसकी असलियत का पता चलेगा।

और मेल बढ़ाने का वह मौका अचानक दूसरे ही दिन उसके हाथ में आ गया। यद्यपि उसका आरंभ दुःख से भरा हुआ था, पर इसीलिए वह स्थायी था। बात यह थी कि माँ की तरह बेबी भी अक्सर मुंडेर पर चढ़ कर उनके घर में झाँका करती थी। ठीक मुंडेर पर पीपल के दरख्त की कुछ शाखाएँ झुक आई थीं। अक्सर वह उन्हें तो ने लगती थी। उस दिन वह जैसे ही उन्हें तो ने को उठी, पैर रपट गया और वह धम्म् से नीचे जा गिरी। उसकी चीख निकल गई। प्रोफेसर की पत्नी नीचे थी, ह ब ाकर दौ ी। देखा, बेबी बुरी तरह रो रही है और उसका चेहरा खून से भरा है। उसका दिल धक् से रह गया, 'हाय ! यह क्या हुआ ! बेबी, बेबी !'

बेबी धीरे-धीरे संज्ञा खो रही थी और उसे सँभालती-सँभालती माँ खुद पागल हो चली थी, पर ठीक इसी समय मुंडेर के पीछे से वही मुस्कुराता हुआ चिर-परिचित चेहरा उभर आया। हाथ में शीशी और डिब्बा था। उन्हें मुंडेर पर टिका कर, वह ऊपर चढ़ी और फिर फुर्ती से उधर कूद प ी। क्षण-भर में यह सब हो गया और दूसरे क्षण बेबी उसकी गोद में थी। रूई से माथे का रक्त पोंछती-पोंछती वह बोली, 'जल्दी से दूध हो तो ले आओ। न हो तो निरी ब्राण्डी ही दे दूँगी।'

प्रोफेसर की पत्नी जैसे जागी। कहा, 'दूध है, अभी लाती हूँ।'

'और चम्मच भी।'

'जी।'

पत्नी गई और वह खून पोंछती रही। माथे पर दाहिनी ओर गहरा घाव बन गया था। उसे 'डिटोल' से साफ किया और फिर धीरे-धीरे उसमें पाउडर भर दिया। बेबी पूरी तरह होश में नहीं थी। जब दूध में ब्राण्डी मिला कर चम्मच से उसे पिलाई, तो उसने आँखें खोलीं। सुंदर गुलाबी चेहरा सफेद चिट्टा हो गया था। वह मुस्कराई और बोली, 'बस बेबी ! घबरा गई। अरे शेर तो न जाने कितनी बार कूदते हैं।'

बेबी आँखें खोले देखती रही। न हँसी, न रोई और न बोली। प्रोफेसर की पत्नी की आँखें कृतज्ञता से भर आईं। बोली, 'आपने. . . . '

'अरे छो ि ये भी। बेबी को डॉक्टर के पास ले जाना होगा। प्रोफेसर साहब आएँ तो कह दीजिये और देखिये, बेबी को लिटाये रखना चाहिये। ज़ख्म काफी गहरा है।'

तभी जीने में खटखट हुई। प्रोफेसर कॉलेज से लौट आए थे। प ोसिन ने सामान सँभाला और अपने घर लौट चली। जाते-जाते फिर कहा, 'ब्राण्डी छो े जाती हूँ। जरूरत होगी तो फिर दे दीजियेगा।'

प्रोफेसर ने यह सब सुना और बेबी को खून से तर देखा तो घबरा उठे। बोले, 'यह क्या हुआ?'

'बेबी मुंडेर से गिर गई।'

'कहाँ चोट लगी? ज़्यादा गहरी लगी क्या?'

'सिर में जख्म गहरा है। प ोसिन ने 'फर्स्ट एड' दी है। कहती है, अभी डॉक्टर के पास ले जाना होगा।'

प्रोफेसर तभी बेबी को लेकर डॉक्टर के पास गए। मरहम-पट्टी हुई। डॉक्टर ने कहा, 'प्रोफेसर आपकी पत्नी ब ी चतुर है।'

'जी।'

'पट्टी ब ी अच्छी तरह की है। ट्रेंड है।'

प्रोफेसर के जी में आया कि कहें, डॉक्टर, जिसने पट्टी बाँधी है वह मेरी पत्नी नहीं है। पर न जाने क्या हुआ, वे बोल न सके। चुप चाप बेबी को लेकर लौट आए तभी ऊपर से आवाज़ आयी, 'सुनिये तो।'

देखा वही थी। पूछ रही थी, 'क्या कहा डॉक्टर ने?'

प्रोफेसर की पत्नी ने जवाब दिया, 'आपकी तारीफ कर रहा था। कहता था जख्म गहरा है। देर लगेगी पर डर नहीं है।'

वह मुस्कराई, 'सब ठीक हो जायेगा।'

और रात होने से पहले एक बार फिर उसने पूछा। इस बार उसके पति भी थे। और फिर वे दोनों रोज सवेरे घूम कर लौटते तो फूलों के कई गुच्छे ले आते। पूछते, 'बेबी कैसी है?'

'ठीक है।'

'ये फूल उसे दे दीजिए।'

दिन बीतते, जख्म भरता और साथ ही साथ प ोसन का प्रेम भी बढ़ता। कभी-कभी छत से आकर वह बेबी को देख जाती। अक्सर कोई न कोई खिलौना ले आती। फूले हुए, उ ने वाले गुब्बारे, सजी हुई गु िया, दो घो ों की गा ी या सुंदर सलोनी गाय।

प्रोफेसर देखते और एक अनिर्वचनीय पी ा से भर उठते। कहते, 'मना क्यों नहीं करती।'

पत्नी कहती, 'कैसे करूँ? सोचती हूँ, इस बार जरूर मना करूँगी पर वह आती है और ऐसे प्रेम से बोलती है, जैसे बेबी उसी की है। बस, मैं बोल भी नहीं सकती।'

प्रोफेसर और भी चिनचिनाते, 'वाहियात ! यह सब बन्द होना चाहिये।'

'तो क्या करूँ?'

'मना कर दो।'

'पर जानते हो, इन्हीं की बदौलत बेबी बची है।'

और तब पत्नी की आँखें भर आतीं। प्रोफेसर उसे देख कर मुँह फेर लेते। शायद उनका दिल भी उम ता, प्रेम से या घृणा से, कौन जाने ! पर उधर का क्रम उसी तरह चलता रहा। यद्यपि जैसे-जैसे ज़ख्म भर रहा था वैसे-वैसे उसका आना भी कम हो रहा था पर साथ ही प्रेम गहरा हो रहा था।

एक दिन आया, बेबी का घाव भर गया और अर्द्धचन्द्राकार एक निशान वहाँ बना रहा। चन्द्रमा के कलंक की तरह यह रेखा प्रोफेसर की पत्नी को अच्छी नहीं लगी लेकिन प ोसिन मुस्करा कर बोली, 'हेलो ! बेबी के माथे पर चन्द्रमा ! शंकर बाबा का चन्द्रमा ! कैसा सुन्दर, कैसा प्यारा !'

बेबी हँस प ी। संध्या होते-होते उसने छत पर से आवाज़ दी, 'जरा सुनोगी, बहिन !'

प्रोफेसर की पत्नी शीघ्रता से आई, 'क्या है जी !'

'लो यह क्रीम है। धीरे-धीरे दो उँगलियों से घाव पर मलिए। देखिए, ऐसे धीरे-धीरे मालिश कीजिए। निशान मिटा नहीं, तो इतना फीका प जायेगा कि दूर से कोई जान न सकेगा, चन्द्रमा में कलंक है।'

प्रोफेसर की पत्नी ने कृतकृत्य होकर कहा, 'आप बहुत अच्छी हैं।'

'यानी बहुत खराब !'

पत्नी धक् से रह गई, 'जी ! नहीं, नहीं जी।'

प ोसिन खिल-खिलाकर हँसी, 'आप तो डर गईं। पर कहा करते हैं कि किसी को यह कहना कि तुम बहुत अच्छे हो तो ऐसा ही है जैसे यह कहना कि तुम बहुत बुरे हो। क्योंकि जो आदमी अच्छा-ही-अच्छा है वह अभी तो कहीं दिखाई देता नहीं। लेकिन जाने भी दो, यह विद्वानों की बाते हैं। वे जानें और जानें तुम्हारे प्रोफेसर। हमें तो यों ही हँस-खेलकर जीवन काट देना है। और हाँ! कल आप हमारे घर आइयेगा।'

'कल क्या है?'

'उनका जन्म-दिन।'

'बधाई। बहुत-बहुत बधाई। बहिन ! तुम्हारा सुहाग अटल रहे।'

'धन्यवाद बहिन ! पर असली बधाई तो आपके आने की है।'

'ज़रूर आऊँगी जी।'

'और प्रोफेसर भी।'

'कह दूँगी।'

'कहना नहीं, लाना होगा। घबराइये नहीं, उनके द्वारा न्योता पहुँच जायेगा।' और वह फिर खिलखिला प ी। प्रोफेसर की पत्नी झेंप गई। प ोसिन ने फिर कहा, 'बेबी को न छो आइयेगा।'

'जी नहीं, सभी आएँगे।'

'धन्यवाद !' उसने कहा और लौट गई।

प्रोफेसर ने जब सुना तब एक बार तो मन में कहा कि मना कर दें। फिर सोचा यह तो बुरी बात है। इसके अलावा उन्हें पास से देखने का जो अवसर मिलेगा, उसे खोना ठीक नहीं होगा। इसीलिए वे अगले दिन ठीक समय पर प ोसी के घर पहुँचे। द्वार पर उन दोनों ने सदा की तरह खिलते हुए सबका स्वागत किया। जिस कमरे में बैठे थे वह बहुत ब ा नहीं था। फरनीचर भी सादा और कम था, पर जो था सुंदर था और ठीक जगह पर लगा हुआ था। एक और फर्श था, जिस पर दूध-सी नई चादर बिछी थी । तकिये भी उतने ही स्वच्छ और कोमल थे। कारनिस पर नाना प्रकार के पशु-पक्षी सजे थे। छोटी गोल तिपाइयों पर शांति निकेतन के बने सुंदर और रंगीन फल रखे हुए थे। लाल रंग के खूबसूरत फूलदानों में रखे हुए ताजे फूलों के गुलदस्तों से भीनी-भीनी महक आ रही थी। आदमी भी ज्यादा नहीं थे। कुल मिलाकर पाँच पुरुष, चार स्त्रियाँ और चार बच्चे थे। एक पारिवारिक परिचय-गोष्ठी थी और सब छुट्टी के 'मूड' में थे। आनन्द-विनोद और मधुर हास्य का वातावरण था। जैसे उनके लिए दुनिया में न कहीं पी ा थी, न विषाद। चारों ओर बस प्रमोद-ही-प्रमोद था। घर में हँसी थी, आसमान हँसता था, हवा हँसती थी और उनके बीच में बसा हुआ मानव भी हँसता था।

देखा, एक कोने में फूलों का अस्त-व्यस्त ढेर लगा है। एक मित्र बोल उठे, 'जिधर देखो, फूल, मानों आप लोग मनुष्य नहीं फूल हैं।' पतिदेव ब े जोर से हँसे, 'अजी पूछिए मत। इन्होंने तो आज मुझे फूल ही समझ लिया था।' दूसरे मित्र हँसे, 'कुशल मनाइए, इन्होंने आपको मसल नहीं दिया।'

एक नवयुवती बोली, 'अजी, फूल नहीं फूलों का देवता समझा होगा।'

पत्नी ने मुस्कराकर कहा, 'अजी, क्या उपमा दी आपने ! इनसे तो पत्थर के देवता कहीं अच्छे !'

एक कहकहा लगा। पति ने हँसते-हँसते कहा, 'क्यों नहीं ! बेचारों पर कितना ही अत्याचार कर लो वे बोलेंगे थो े ही। पर भाई ! मुझसे तो यह सब सहा नहीं जाता। पहले ठंडे पानी में नहाइए। फिर पूजा करिए। फिर पूजा करवाइए। यह खाइए, देवी का प्रसाद, यह देवता का, यह

आपकी दासी का, यह टीका लगवाइए, लीजिए मेरी माँग में सिन्दूर भर दीजिए। भला कोई अंत है इस पूजा का ! बाप रे ! पत्थर की ही हिम्मत है।'

और तब ऐसा कहकहा लगा कि हँसते-हँसते सबके पेट में बल प गए। आँखों में आँसू भर आए, पर क्या मज़ाल वह झेपी हो। उसी तरह हँसती रही। फिर हँसी-हँसी में काम की बातें चलीं। बधाइयाँ दी गईं और सूचना मिली कि चाय तैयार है। सब उठे और मेज़ पर पहुँचे। प्रोफेसर ने अब एक बार फिर उन्हें ध्यान से देखा, 'वही उल्लास। वही उमंगों की बेगवती धारा !'

'क्या है यह'. . . . उन्होंने सोचा और म्लान मन चुपचाप चीनी घोलने लगे। सामने प्लेटों में ताजे रसगुल्ले थे, गुलाब जामुनें थीं, पे` थे, पेठे की डलियाँ थीं और थे गरम-गरम समोसे, दालभीजी, टिकिया। कहते हैं, हँसते-हँसते और चार जनों में ज़्यादा खाया जाता है। प्रोफेसर भी हँसते थे और खाते थे, पर रह-रहकर उनके हृदय में जैसे कोई सुई चुभ उठती थी। वे 'सी' करना चाहते थे, पर कर नहीं सकते थे। इसलिए पी ा और भी असह्य हो उठी थी। तभी अचानक उन्होंने देखा, बेबी खेलती-कूदती चारों ओर दौ रही है। कभी इस खिलौने को छूती है, कभी उसको। ध्यान आया कि कहीं कुछ तो न दे इसलिए पुकार लें। पर जैसे ही उन्होंने पुकारना चाहा, बेबी भागी। उसका पैर तिपाई में लगा। तिपाई उलट गई और उस पर के खिलौने, कीमती फूलदान चूर-चूर होकर फर्श पर बिखर गए। जैसे भूडोल आया। प्रोफेसर क्रुद्ध चिल्ला उठे, 'कमबख़्त ! तूने यह क्या किया !'

क्षण-भर के लिए प्रशांत सागर उबल उठा। सबकी दृष्टि उस ओर उठी। गृहणी ने एक बार क्रुद्ध प्रोफेसर को देखा फिर सहमी, सकपकाई बेबी को और फिर खिल-खिलाकर हँस प ी। देखते-देखते बेबी को गोदी में भर लिया और पागलों की तरह चूमने लगी, 'बेबी, मेरी बेबी ! जानती हो, तुमने आज एक बहुत ब ा काम किया है, बहुत ब ा।'

और फिर प्रोफेसर की ओर मु कर उसने कहा, 'आप ब` निर्दयी हैं। ऐसे प्यारे बच्चे को ता ते हैं। खिलौनों का मूल्य खेलने में है और जब उनसे खेला जायेगा तो उनका टूटना ज़रूरी है।'

फिर क्षण-भर के लिए रुकी, जैसे साँस लेती हो। धीरे-से बोली, 'न जाने कब से रखे थे। न कोई छूता था, न कोई खेलता था। देखते-देखते आँखें थक गई थीं। आज बेबी ने उसी थकान को दूर किया है।'

और कह कर उन्होंने फिर बेबी को जोर से चूमा और फिर उतार-उतार कर सारे खिलौने सामने डालने लगी, 'खेलो और तो ो, मेरी बच्ची ! खूब तो ो। आखिर इनका अंत आना ही चाहिए, आना ही चाहिए।'

जैसे कमरे में निस्तब्धता छा गई। अपलक-अवाक् सब उस नारी को देखते रह गए। वह अब भी उसी तरह हँस रही थी, हँसे जा रही थी पर उस हँसी के पीछे पी ा का जो अदृश्य सागर लहरा रहा था वह आज प्रकट हो गया था। प्रोफेसर ने उसे स्पष्ट देखा। यह उनकी विजय थी। उनके हर्ष का अवसर था, पर न जाने क्यों वे एक अनिर्वचनीय सहानुभूति से भर उठे और मन-ही-मन उन्होंने कहा, 'इतने ब` अभाव को हृदय मे छिपा कर भी जो इतना खुल कर हँस सकता है उस व्यक्ति को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

दीया जलाये जा

डॉ. शशि तिवारी

माहौल को तू अपने जैसा बनाये जा,
इस ज़िन्दगी को कुछ तो रस्ता दिखाये जा।
राहों के अँधेरे की तू कुछ फ़िक्र न कर,
नन्हा ही सही, प्यार का दीया जलाये जा।
हालात बदलने की कोशिश तो करके देख,
क़दमों को मंज़िल की जानिब बढ़ाये जा।
कश्ती के डूबने का तू अब न कर मलाल,
साहिल पे पहुँचने का अब तू गुर सिखाये जा।
जाँ अपनी हथेली पर लेकर तू चल रहा,
इस हौसले का राज़ तू सबको बताये जा।

खाते हिन्दी की, गाते अँग्रेजी की

जसदेव सिंह

बात १९६४ की है। उस वर्ष टोकियो ओलम्पिक खेलों के प्रसारण के लिए प्रख्यात कमेंटेटर स्व. मैलविल डिमैलो के साथ आकाशवाणी ने हिन्दी कमेंट्री के लिए मुझे भेजा था। यह पहला अवसर था कि विदेशी धरती से हिन्दी कमेंट्री भी प्रसारित की गई। प्रसारण व्यवस्था और उपलब्ध सुविधाएँ देखने डिमैलो और मैं कोमाजावा हॉकी मैदान के निकट तो पहुँच गये, पर वहाँ अन्य कोई खेल मैदान होने के कारण हम समझ नहीं पा रहे थे कि किधर जायें? चार-पाँच जापानी युवकों को देख डिमैलो ने अँग्रेजी (जो उनकी मातृभाषा थी) में उनसे पूछा कि कोमाजावा मैदान कौन-सा है? एक साथ उन सभी की गर्दनें हिलीं जैसे हमारी बात न समझी हो, 'नो इँगलिश'। परेशानहाल किसी तरह हम दोनों जब अपनी मंजिल पर पहुँचे तो आश्चर्यचकित। वह युवा मंडली वहाँ पहले से ही मौजूद थी। आश्चर्य तो हमें अभी और होना था, जब हमें देख उनके चेहरों पर शरारतभरी मुस्कान दिखाई दी। उनमें से एक ने अपनी टूटी-फूटी अँग्रेजी में पूछा कि क्या आपके देश की अपनी कोई भाषा नहीं है? हम शर्म से पानी-पानी। अपनी बात स्पष्ट करते हुए उनमें से एक ने किसी तरह समझाया कि आप हिन्दी में पूछते, तब भी हम इशारों की भाषा से ही आपको यहाँ का रास्ता समझा देते। आपने अँग्रेजी में पूछा - एक विदेशी भाषा में। यह पहला अवसर था कि जब विदेश की धरती पर मुझे अपनी भाषा पर गर्व हुआ।

आज जब अपने ही देशवासियों को आपस में अँग्रेजी बोलते देखता हूँ तो आश्चर्य होता है कि हिन्दी न सही, अपनी मातृभाषा में ही बातें क्यों नहीं करते? पंजाबी पंजाबी में, तमिलभाषी तमिल में, महाराष्ट्र के लोग मराठी में, यानी जो जिस प्रदेश में जन्मा, पला, बढ़ा, वहीं की भाषा में बात क्यों नहीं करता? आपसी वार्तालाप में अँग्रेजी की बैसाखियाँ लगाने का क्या मतलब?

'अजीब वक्त आ प ा है हम पर, जबाँ भी अपनी ज़ुबाँ नहीं है,
वे लोरियाँ जिसकी सुन रहे हैं, उसी को कहते हैं माँ नहीं है।'

फिल्म अभिनेता और अभिनेत्रियों को ही लीजिये। दुनिया-भर में जो फिल्में लोकप्रियता प्राप्त करती हैं, वे अधिकतर हिन्दी में होती हैं, पर वही लोग जब टी.वी. चैनलों पर संवाद-दाताओं से बात करते हैं, तो दो-एक अपवाद छो कर सभी अँग्रेजी में ऐसे उत्तर देते हैं, जैसे वही उनकी मातृभाषा हो। कैसी विडम्बना है? ये 'खाते हिन्दी की हैं, गाते अँग्रेजी की।' विश्व के अनेक देशों के लोग आजकल हिन्दी पढ़ रहे हैं। जापान हो या चीन, अमेरिका, पोलैंड, रूस, हंगरी आदि कितने ही ऐसे देश हैं, जहाँ हिन्दी का खूब प्रसार हो रहा है। वहाँ केवल स्कूलों में ही नहीं, विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी की शिक्षा दी जाती है, शोध कार्य होते हैं।

दुःख तो तब होता है, जब हमारे देश के अनेक हिन्दी टी.वी. कार्यक्रम-प्रस्तुतकर्ता या समाचारवाचक बीच-बीच में अँग्रेजी शब्दों का 'छौंक' लगाये बिना नहीं रह सकते। और तो और, यह जो छोटा-सा 'ब्रेक' लिया जाता है (ब ा कभी नहीं सुना), तो क्या हिन्दी में 'अंतराल' या 'वक्फः' नहीं कहा जा सकता? फिर क्या केवल 'ब्रेक' कहना ही काफी नहीं होता कि ये विशेषण लगायें जायें कि 'अब हम लेंगे एक छोटा-सा ब्रेक'। अब कोई पूछे कि इस छोटे-से 'ब्रेक' की अवधि और नाप कितना होता है? अँग्रेजी जिनकी मातृभाषा थी, वे कोई दो शताब्दियों तक हम पर शासन करने के बाद अपने देश लौट गये, पर अपनी भाषा का 'रुतवा' अवश्य हम पर छो ते गए। ठीक है, आज अँग्रेजी पहचान और मान्यता रखती है। हम उसे छो नहीं सकते और ना ही उसे छो ना चाहिये। आज हमें तो इस बात पर गर्व है कि हमारे देश के कितने ही अँग्रेजी साहित्यकार, कवि, बुद्धि-जीवी, पत्रकार और प्रशासक सारे विश्व में अपनी पहचान बना चुके हैं, पर इसका यह अर्थ तो नहीं कि अँग्रेजी को हम हिन्दी और देश की अन्य भाषाओं में, जो हमारे विभिन्न प्रदेशों के निवासियों की मातृभाषाएँ हैं, घुसपैठ करने दें ! हिन्दी हो या उर्दू या बंगला या तमिल या पंजाबी, सभी समृद्ध भाषाएँ हैं हमें हिन्दी सहित अपने देश की हर भाषा पर गर्व है -

'वह उर्दू हो कि हिन्दी, हम दोनों के हैं वारिस,
वैसे है अपना रिस्ता भारत की हर ज़ुबाँ से।'

लेकिन दरअसल आज हो यह रहा है कि हममें से बहुतों ने अँग्रेजी को प्रतिष्ठा की भाषा समझ लिया है। आप ही बताएँ, कतिपय हिन्दी समाचार-पत्र भी जब ऐसी दोगली भाषा में समाचार प्रकाशित करने लगें, तो क्या समझा जाए? यही न कि वे अँग्रेजी को अपनी स्वयं की भाषा हिन्दी से कहीं अधिक महत्व देते हैं। नमूना देखिए -

'आज मार्केटों में हर प्रकार के डिफरेंट किस्म के गुड्स और वस्तुएँ अवेलेबिल हैं। फेस्टिवल का सीजन है, बाजारों में परचेजर्स के क्राउड्स हर समय देखे जा सकते हैं। ईटेबिल्स् की भी भरमार है। भी इतनी कि ट्रैफिक पर कंट्रोल करना भी कई बार पॉसीबल नहीं होता। यंगर जेनेरेशन को मॉडर्न ड्रेसेज और इलेक्ट्रानिक्स विशेष रूप से अट्रैक्ट करते हैं. . . .' आदि।

ठीक सोच रहे हैं आप कि यह खिचड़ी भाषा किस देश-प्रदेश की है? और इसका उद्देश्य क्या है? मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा हूँ कि इससे किसका लाभ होगा, हिन्दी का या फिर अँग्रेजी का? इससे दोनों ही घाटे में रहेंगी -

'न खुदा ही मिला, न विसाले सनम
न इधर के रहे, न उधर के रहे।'

पर मैंने इसे लिखा है केवल एक बानगी के रूप में - एक हिन्दी दैनिक समाचार-पत्र में कुछ ऐसी ही मिश्रित भाषा में समाचार पढ़ कर। अब यह आप ही निर्णय करें कि क्या अपनी ही भाषा को इस प्रकार भ्रष्ट करना उचित है?

दो-एक अन्य हिन्दी समाचार-पत्रों ने तो अपना नामकरण ही अँग्रेजी में कर दिया है, शायद यह सोच कर कि अँग्रेजी नाम से पाठक आकर्षित होंगे? पर फिर पोस्टरों आदि द्वारा यह प्रचार क्यों किया जा रहा है कि अँग्रेजी का रौब और हिन्दी सेवा का नाम भी? स्पष्ट है कि हिन्दी क्षेत्र में तो लोग हिन्दी ही पढ़ेंगे। फिर अखबार का नाम अँग्रेजी में देकर उस भाषा का अहसान क्यों लें? एक बात निश्चित है कि इस प्रकार से हिन्दी के सिर पर अँग्रेजी को बिठाने से हिन्दी का कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैंने तो एक बात समझी है कि जो लोग अपनी मातृभाषा का सम्मान नहीं कर सकते , वे अपने देश को भी क्या मान देंगे?

'मिल गई उनको अँग्रेजी की चिन्दी,
वो भुला बैठे हैं अपनी ही भाषा हिन्दी।'

यह सही है कि भाषा कोई भी हो, उसका हृदय विशाल होना चाहिये। यदि अँग्रेजी के कुछ शब्द हमारी दैनिक बोल-चाल में आ गये हैं, तो उन्हें स्वीकार करने में कोई हर्ज़ नहीं है। ऐसा हो भी रहा है। इससे तो हिन्दी की विशालता ही बढ़ेगी, वह और समृद्ध होगी, किंतु इसका अर्थ यह तो नहीं कि अँग्रेजी के कुछ प्रचलित शब्दों को स्वीकारते-स्वीकारते हिन्दी अपनी पहचान ही खो दे, ऐसा कभी नहीं होगा। भाषाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं। हर भाषा की अपनी संस्कृति होती है, अपना इतिहास होता है। लैटिन, संस्कृत, अरबी, फारसी, हिन्दी, चीनी आदि कोई भी हो। कोई देश ऐसा नहीं होगा, जो अपनी भाषा को अतीत में खो जाने दे। आज तो अनेक देश यह चाहते हैं, बल्कि प्रयत्न कर रहे हैं कि उनके देश के लोग अन्य देशों की भाषाएँ पढ़ें और लिखें। विदेशों से अनेक लोग भारत में हिन्दी, उर्दू और अन्य भाषाएँ पढ़ने आते हैं। वैसे हमारे देश के लोग भी विद्याध्ययन के लिए अन्य देशों में जाते हैं, किंतु यह कहीं नहीं देखा कि अँग्रेजी या किसी अन्य देश की भाषा में हिन्दी शब्दों का यों उपयोग हो रहा हो, जैसा हम अपनी वार्तालाप में करते हैं। देश की नयी और युवा पीढ़ी के नाम पर यदि यह प्रयोग किया जा रहा हो, तो मैं नहीं समझता कि वह भी इसे लेखन या अध्ययन, पुस्तकों अथवा समाचार-पत्रों में स्वीकार करें।

अपनी भाषा अपनी ही होती है, वही देश को एकता के सूत्र में बाँधे रखने की सामर्थ्य रखती है। मातृभाषा हिन्दी के महान प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के शब्दों में -

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।'

वर्षों पूर्व उन्होंने जो कुछ कहा था, वह आज की परिस्थितियों में उस समय से भी कहीं अधिक तर्कसंगत है। किसी भाषा का ज्ञान बुरा नहीं, उसमें आकंठ डूब जाना भी बुरा नहीं, परन्तु उसकी मरीचिका में फँस कर अपनी मौलिकता को विस्मृत कर देना अवश्य ही निन्दनीय है। भाषा किसी देश की हो, वह उस देश की सभ्यता और संस्कारों का आईना होती है। उसमें उस देश की

धरती की खुशबू व्याप्त रहती है। भाषा देश की पहचान होती है। वह सांस्कृतिक रूप से देश को जो ती है और सबसे ऊपर यह कि वह राष्ट्रीय भावना को जीवित रखती है। अपनी भाषा से विमुख हो कर कोई देश आगे नहीं बढ़ सकता। वर्षों पहले शायद किसी ऐसे ही संदर्भ में अल्लामा इकबाल ने देशवासियों को चेताया था -

'न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिंदोस्ताँ वालो
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानों में।'

भारत माता और हिन्दी

रामगोपाल 'राही'

व्यक्त करें शब्दों में कैसे-
अनुपम जिसकी रूप-छवि,
विविध बोलियाँ हर अंचल में,
विकसित हिन्दी रूप छवि।।
माँ कंठ से मुखरित-हिन्दी,
भाषा राष्ट्र की माता है।
चहुँ ओर से मुखरित वाणी,
हिन्दी सुख की दाता है।।
पुण्य धरा भारत माँ पावन,
उत्तर भाल - हिमालय तक-
पूरब, पश्चिम व दक्षिण में
सीमा घर-घर आलय तक।।
हरी-भरी-भू-अंतर सरिता,
त्रितट-सिंधु-सुहाता है।
चहुँ ओर से मुखरित वाणी,
हिन्दी सुख की दाता है।।
विविध खनिज दे, अंचल पावन,
गंगा जैसी नदी कहाँ?
पुण्य धरा; परमेश्वर आते जग में
ऐसी जगह कहाँ?
ब्रह्म ब्राह्मी-देवनागरी-
हिन्दी-रूप लुभाता है।
चहुँ ओर से मुखरित वाणी
हिन्दी सुख की दाता है।।
भाषा ध्वज हैं प्राण देश के-
प्राण से बढ़ कर भारत है।
अर्पित है सर्वस्व इसी को-
प्राण से प्यारा भारत है।।
धरा कीर्ति-हिन्द-देश की
हिन्दी - जग से नाता है।
चहुँ ओर से मुखरित वाणी
हिन्दी सुख की दाता है।।
जय भारत-जय भारत माता-
जय जय हिन्दी भाषा की।
अमर-चेतना ब्रह्म-जगत् में,
वाणी भाग्य-विधाता की।।
राष्ट्र की भाषा ही अपनाना,
राष्ट्र भक्ति दर्शाता है।
चहुँ ओर से मुखरित वाणी
हिन्दी सुख की दाता है।।

एडोप्टेड डोटर

इन्दु गुप्ता

उन दिनों गोवा में हम नये-नये शिफ्ट हुए थे। सब के चले जाने के बाद मैं घर जमाने में व्यस्त रहती थी, इसीलिए अभी कुछेक परिवारों से ही हल्की-फुल्की पहचान हो पाई थी। उनमें से ही एक डिसूज़ा दम्पति भी थे, जिनकी दो बेटियाँ और एक बेटा है। ब ी बेटी मारथा और बेटा जोंस मुंबई के किसी कॉलेज में पढ़ते हैं तथा एक बेटी जेनी उनके साथ रहती है - उनके बारे में मैं सिर्फ़ इतना ही जानती थी।

पिछले तीन दिन से उनके घर से रोने-चिल्लाने की आवाज़ें आ रही थीं। व्यस्तता तथा हिचक के कारण उनके पास जाने की हिम्मत नहीं हुई। आज अचानक उनकी बेटी जेनी मिल्क बूथ पर मिल गई। चलते-चलते मैंने यूँ ही उनके घर से आ रही आवाज़ों के बारे में पूछ लिया तो वह फूट-फूटकर रोने लगी। मेरे आग्रह करने पर वह छिपती, सहमती-सी हमारे घर आ गई। मैंने उसे कुछ फल और केक खाने को दिये।

कुछ ही पल में उसने अपनी क्षुधा शांत कर ली। फिर बोली, 'आंटी, मैंने पिछले तीन दिन से सिर्फ़ मार खाई है', कह कर उसने अपना बदन मेरे सामने उघा दिया। गहरे नील बेरहम पिटाई को बयान कर रहे थे। मैं हैरान थी कि कोई अपने बच्चे को इस तरह कैसे मार सकता है। वह बोलती रही, 'आजकल ब्रदर जोंस आया हुआ है....तीन दिन पहले उसने मुझे मेरे ब्वॉयफ्रेंड के साथ देख लिया, इसका वास्ते यह सब मिल कर हमको इतना मारा....'

मैं सकते में थी, फिर भी मैंने उसे समझाने का यत्न किया, 'बेटी, तुम्हारे पेरेंट्स तुम्हारी भलाई के लिए ही कहते हैं, तुम स्टडीज़ पर ध्यान दो।' अचानक उसने रहस्योद्घाटन किया, 'आंटी ! डिसूज़ास मेरे पेरेंट्स नहीं हैं, न ही वे मुझे स्कूल भेजते हैं, मैं तो उनकी एडॉप्टेड डॉटर हूँ। सोसायटी में उन लोग ब` प्राउड से कहता है कि वो एक ऑरफन को एडॉप्ट कर अपना डॉटर बनाया है, लेकिन सच्चाई यह है कि हम उनके घर में गुलाम का माफिक है। उनका बिना पगार का नौकरानी कहीं अपना ब्वॉयफ्रेंड के साथ भाग न जाए इसीलिए तो वो लोग हमको मारता, डराता और सताता है'....

जेनी डर के मारे जल्दी ही चली गई।

समाज-सुधारकों के भेष में छिपे उन स्वार्थी अत्याचारियों के प्रति मन घोर वितृष्णा से भर गया।

सृजन का भार है मुझ पर

डॉ. रमेश मिलन

सृजन का भार है मुझ पर, मैं नव-उत्थान लाऊँगा।
भ्रमर बन गुनगुनाते तुम, छला करते हो कलियों को
गरल सूने नयन का मैं, पिलाता अपनी सुधियों को
शिवा की नीलिमा लेकर, मैं मधु के घन चुबाऊँगा....
दीप-शोषण तले निश-दिन, विवशता की सुरा पीते
श्याम-धन के पुजारी तुम, मनुजता से हृदय रीते
कुटी का दो गिरा छप्पर, शीश पर मैं उठाऊँगा....
वासना-भीत में कब तक, चिनोगे फ़र्ज़ इन्सानी
छलेगा एक दिन वैभव, विदा कर आँख का पानी
लगेगी जब तुम्हें ठोकर, मसीहा बन के आऊँगा....

मुझे माफ करना
'मेरी रचना : मेरी दृष्टि में'

(दीदी, दिनेशनन्दिनी डालमिया जी को इस नश्वर संसार से गये ७ अक्टूबर को तीन वर्ष हो जायेंगे पर उनकी स्नेहिल स्मृति जैसी की तैसी बनी हुई है यह मेरा सौभाग्य है। यह स्मृति जीवन-पर्यन्त धूमिल नहीं होगी। 'वसुधा' में समय-समय पर उनकी रचनायें पाठकों के हृदय-पटल पर भी छाये हल्के-से कोहरे को छिन्न-भिन्न करेंगी। दीदी के नाम के आगे स्वर्गीय नहीं लिख रही हूँ क्योंकि वे इस संसार से पलायन करने के बावजूद भी अपने साहित्य के माध्म से जीवित हैं, हमारे साथ हैं - संपादक)

दिनेशनन्दिनी डालमिया

एक लम्बे अंतराल के बाद जब मैंने कलम हाथ में पक ी तो गद्य गीतों का संसार सूना हो गया था। काफी समय से अंदर ही अंदर समुद्र-मंथन-सा चल रहा था। आत्म-विश्लेषण की उथल-पुथल जब बौखलाये जल की तरह सँभल न सकी तब कलम के सहारे बाहर निकली, 'मुझे माफ करना' के रूप में।

अपने निजी जीवन का कच्चा चिट्ठा अंकित करते सम्भवतः मैंने सोचा भी नहीं था कि एक दिन उसे छपवाकर, सब पर प्रकट करने का साहस बटोर पाऊँगी। लिखते हुए एक तथ्य मेरे सामने स्पष्ट हो गया कि इन वर्षों के दौरान अपने व्यक्तित्व का ह्रास और आत्महनन का संताप मैंने ऊपरी तौर पर जिस शांति और धैर्य के साथ सहन कर लिया था वह मेरे स्वाभाव के अनुकूल नहीं था। इसीलिए अंदर ही अंदर धधकते हुए उसने ज्वालामुखी का रूप ले लिया। जिस अन्याय को मेरा मन कभी स्वीकार नहीं कर पाया उसका विरोध करता रहा। इस विद्रोही मन को वश में रखना अब मेरे लिए संभव नहीं था। पर मेरे सामने एक कठिन समस्या थी।

अपने नकारात्मक अनुभवों को अभिव्यक्त करते हुए मैं अपने ही, अपने से जु े अन्य व्यक्तियों के निजी जीवन की गोपनीयता का अतिक्रमण कर रही थी, जिसका मुझे कोई अधिकार न था। इसी अनाधिकार चेष्टा के एहसास के फलस्वरूप जब इस आत्म-कथा को मैंने उपन्यास के रूप में प्रकाशित करवा कर जग-जाहिर कर दिया तो एक अपराध-बोध से बुरी तरह ग्रसित थी मैं। शायद आज भी हूँ। अतः जिन लोगों के व्यक्तिगत जीवन की गोपनीयता को इस पुस्तक में उजागर कर मैंने दुःख पहुँचाया था, (जिनमें मैं स्वयं भी शामिल थी) उनका ध्यान रखते हुए, उन्हीं को संबोधित कर मैंने इस उपन्यास का शीर्षक रखा था, 'मुझे माफ करना'।

इस प्रकार स्वयं ही अपने को अनावृत्त करते हुए जो पी ा स्वयं अपने लिए, अपनों की पी ा से पुनः स्वयं पी ित होकर, उत्पन्न हुई थी, क्या शीर्षक के द्वारा क्षमा माँग कर कम हो पाई? क्या उन लोगों ने मुझे वास्तव में क्षमा किया? क्या मैंने स्वयं अपने-आप को क्षमा किया? मैं नहीं जानती। ये प्रश्न आज भी मेरे सामने मुँह बाये ख े हैं। शायद अभी तक मैं इनके उत्तर खोज रही हूँ।

'मुझे माफ करना' की नायिका मन्दा, एक साधारण, मध्यवर्गीय परिवार की असाधारण बुद्धि वाली विदुषी महिला है, जो अपने सारे सिद्धांतों को ताक पर रख कर, स्वेच्छा से, एक ऐसे जाने-माने, अपार धन-राशि के स्वामी, देश के शीर्षस्थ उद्योगपति से विवाह कर लेती है, जिनकी एक से अधिक पत्नियाँ पहले से ही हैं।

अपने सिद्धांतों से यह समझौता नायिका को बहुत महँगा प ता है जिसका मूल्य वह जीवन-भर चुकाती है। विशिष्ट और विचित्र व्यक्तित्व वाले दो विरोधी स्वाभाव के व्यक्तियों के बेमेल विवाह की कहानी कहते हुए मैंने तथ्यों की प्रस्तुति में यथा-सम्भव तटस्थ रहने का प्रयत्न किया है। पति-गृह में प्रवेश करते ही वह जान जाती है कि प्रेम की पुजारिन कोमल हृदय वाली यह नायिका किसी मनुष्य के हृदय की प्राचीरों में बँधने के बजाय पत्थर के किले में कैद हो गई है। संवेदनशील नायिका मंदा का दाम्पत्य-जीवन, पति के व्यापार-जगत की जटिलताओं के बीच भावनाओं की गहराई से सर्वथा अछूता रह जाता है। मंदा उस जगत के हाशिये पर चलती एक कठपुतली बन कर रह जाती है।

दूसरी ओर नायक भी, कहीं अधिक असाधारण एवं विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न होते हुए बहुत-सी मानवीय दुर्बलताओं का शिकार है, जो कालान्तर में नायिका से छिपी नहीं रहती। संक्षेप में कहूँ तो 'मुझे माफ करना', दाम्पत्य संबंध की नज़दीकियों में निहित दूरियों का यथार्थपरक चित्रण है। आज के माहौल में भी ये दूरियाँ मुझे अपने आस-पास के जो ों में दिखाई प ती हैं। कारण कोई भी हो।

अधिकतर एक नहीं, कारण अनेक होते हैं। इस उपन्यास में अनेक कारणों में से एक बहुत ब ा कारण है - बहुपत्नीत्व। किन्तु ध्यान देने की बात है कि पत्नी-प्रेम बाँटने के लिए दूसरी पत्नियाँ हों या प्रेमिकाएँ, स्थिति न्यूनाधिक एक-सी ही होती है। मुझे यह उपन्यास आज के सामाजिक वातावरण में भी उतना ही सार्थक लगता है, बल्कि अधिक ही। घरवालों को बिना बताए, चोरी-चोरी विवाह कर लेना आदि आज भी हो रहा है। पहले की तुलना में कहीं अधिक। वह भी, धोखा देकर।

जिन स्त्रियों को इस स्थिति का सामना करना प ता है, उन्हें और उनके परिवार वालों को ऐसा लगता है कि हमारे साथ ही यह अन्याय क्यों हो रहा है। सच्ची घटनाओं पर आधारित मेरे इस उपन्यास को पढ़ कर यदि उनकी पी ा कुछ कम हो सके तो मेरा प्रयास सार्थक है। मैंने कभी आँक े तो इकट्ठे नहीं किये किंतु आशा ही नहीं, मुझे विश्वास है कि कुछ लोगों को फ़र्क अवश्य प ा होगा।

मेरे विचार से यह उपन्यास यथार्थ के कटु सत्य को प्रस्तुत कर एकबारगी भले ही हमारी चेतना को झकझोर दे, लेकिन फिर यह चेतना ही हमें उस कठोर सत्य का सामना करने की शक्ति व क्षमता प्रदान करती है। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं, क्योंकि यह मेरा भोगा हुआ यथार्थ है।

यथार्थ को स्वीकार करना आसान नहीं होता। अधिकतर ऐसा होता है कि पति का एक-निष्ठ प्रेम न पाने वाली स्त्री स्वयं को इस भ्रम में रखना चाहती है और समाज में अपना मान बनाये रखने के लिए यह दिखाती है कि उसके पति उससे बहुत प्रेम करते हैं। कटु-सत्यों को भूल जाने का प्रयास करती है जिसके फलस्वरूप वे अवचेतन मस्तिष्क में अपनी जगह बनाकर फलते-फूलते हैं और उसके आचार-व्यवहार को प्रभावित करते हैं। स्त्री ही क्यों, मानव-मात्र ऐसी ही जटिल मानसिक ग्रन्थियों का शिकार बनता है।

'मुझे माफ करना' की नायिका मंदा को अपने पति का संसर्ग प्राप्त करने की हो में अपनी शिक्षा, अपनी बुद्धिमत्ता और यहाँ तक कि अपनी अस्मिता को भूल कर मंदा से चंद्रा बनना प ता है। इस स्थिति के माध्यम से समाज में स्त्रियों की दोयम् दर्जे की नागरिकता स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है।

नायिका प्रधान होते हुए भी इस उपन्यास का केन्द्र नायक ही है। अन्य सब पात्र अपनी-अपनी दूरी के अनुसार परिधि पर उसकी परिक्रमा करते हुए दिखाई देते हैं जैसे सौर-मण्डल में सूर्य की परिक्रमा करते ग्रह-उपग्रह हों। समय, अवसर और परिस्थिति के अनुसार स्थान बदलते हुए ये ग्रह और उपग्रह आपस में टकराते हैं, टूटते-बिखरते हैं और मानवीय संबंधों के बंधन में बँध और उलझकर छटपटाते भी हैं किन्तु मनुष्य इतनी आसानी से हार नहीं मानता, भविष्य की ओर उन्मुख हो आशावान् होने का प्रयास करता है। 'मुझे माफ करना' के अंत में नायिका विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए ऐसे ही भविष्य की ओर उन्मुख दिखाई देती है।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए अब मुझे इसमें बहुत-सी खामियाँ दिखाई देती हैं। कुछ बातें तो छूट गईं या जानबूझ कर छो दी गई हैं इसलिए कि उन्हें प्रकट करने का साहस नहीं कर सकी, उनके बिना कुछ अधूरापन-सा लगता है।

इन पृष्ठों में मेरे जीवन का जो इतिहास अंकित है, वह अपूर्ण-सा महसूस होता है - एक अर्द्ध-सत्य, जो एकांगी है। बहुत कुछ अछूता रह गया है। कुछ अस्पष्ट-सी झलकियाँ हैं। मेरा साहित्य दुःख का, उदासी का साहित्य है। यदि कहीं क्षण-भर का सुख मिलता दिखाई भी देता है तो उस पर दुःख की छाया मँडराती जान प ती है। बहुत पहले से ही मेरी घनीभूत उदासी मेरी छाया की तरह मुझसे जु ी रही। इससे किसी का मनोरंजन नहीं हो सका, मनोयोग, मनोविश्लेषण भले ही हो सके।

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि अब अगर मैं लिखती तो अधिक निर्भीक होकर स्पष्ट रूप से सब कुछ लिख पाती और इस रचना का स्वरूप कुछ और ही होता। फिर भी इसमें जो भी अंकित है वह मेरी उस समय की मनःस्थिति और परिस्थितियों का दस्तावेज़ है और सम्भवतः इस दृष्टि से अधिक प्रामाणिक भी।

फिर सपने बो गई ज़िन्दगी

सावित्री शर्मा

लगा अकेलेपन में हमको
बहुत दूर हो गई ज़िन्दगी।

रिश्तों के छतनार वृक्ष की
जितनी छाँव मिले वह कम है।
स्नेहिल सम्बोधन सुन लगता
खिल-खिल हँसा कहीं मौसम है।।

दूध नहाई रातों में फिर -
फिर सपने बो गई ज़िन्दगी।
लगा अकेलेपन में हमको
बहुत दूर हो गई ज़िन्दगी।।

चलते-चलते भरी भी   में
हाथ छु ा साथी चल देता !
कुमकुम, केसर पोंछ समय तब
अंग-रंग श्यामल मल देता।।

राह अजानी कहाँ खोजते
पल भर में खो गई ज़िन्दगी।
लगा अकेलेपन में हमको
बहुत दूर हो गई ज़िन्दगी।।

तेज़ धार में नाव पुरानी
डगमग-डगमग डोल रही है !
थकी-थकी हर साँस दुःख-सुख
ठहर-ठहर कर तोल रही है।।

छूट गिरी पतवार बीच में
सहसा ही सो गई ज़िन्दगी।
लगा अकेलेपन में हमको
बहुत दूर हो गई ज़िन्दगी।।

डा. नरेन्द्र कोहली की औपन्यासिक पृष्ठभूमि

डा. अनिल कुमार

कथा-कहानियों की सर्जना, संसार की विकसित सभ्यता की भूमि पर जीने वाले मानवीय सुख-दुःख से हुई है। वे कथाएँ अत्यन्त मर्मस्पर्शी होती हैं; क्योंकि उनमें कल्पना नहीं, आत्मबीती होती है। यह ध्यातव्य है कि जब कोई व्यक्ति अपनी आपबीती किसी दूसरे को परोसता है, तो उसके बीते दिनों की वह बात, जिसमें उसके अतीत के साथ उसका दुःख-सुख लिपटा है, अत्यन्त प्रांजल होती है। वह आपबीती, सुनने वाले को आख्यान प्रतीत होती है। वह आख्यान लयविहीन होने पर भी, हर्ष-विषाद उत्पन्न करने की क्षमता से भरपूर होता है; तथा कथा के मध्य से कभी-कभार जिस लम्बे निःश्वास की संवेदनात्मक ध्वनि सुनाई प ती है, वह कविता से भी अधिक गंभीर और प्रभावकारी होती है। यही कारण है कि कथा साहित्य की प्रेरणा बाह्य उपादान नहीं, बल्कि मनुष्य के अन्तर्मन की जन्मजात प्रवृत्तियाँ ही हैं।

कथा-कहानियों की परम्परा, प्राचीन भारतीय साहित्य के अन्तर्गत पद्य में प्रचुरता से पायी जाती है। पुराण तो कहानियों का भंडार ही हैं। पौराणिक कहानियों में विभिन्न राजवंशों और देवताओं की प्रशस्तियों के साथ, उस काल की सभ्यता, शिक्षा, आचार-विचार, नीति-न्याय, धर्म आदि को कथा के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया गया है, जो किसी भी प्रगतिशील मानव और मानवीय समाज को किसी भी काल, देश, जाति और उसकी परिस्थिति में दिशा और दृष्टि देने में पूर्णतः सक्षम है।

रामायण और महाभारत दो ऐसे महाकाव्य हैं, जिनकी कथा-वस्तु में आधुनिक कथा-साहित्य के तत्व पाये जाते हैं। भारतीय समाज और उसकी जीवन-धारा के आधार की ये अमूल्य कथाएँ न केवल समकालीन वरन् प्राचीन युग से ही भारतीय जीवन के साथ विश्व के मानव समाज को दिशा और दृष्टि देती आ रही हैं। इन प्राचीन कथाओं में मानव और मानव-समाज तथा उसके चरित्र आदि के साथ विभिन्न प्रसंगों में जो भूत, वर्तमान और भविष्य की दृष्टि और दिशा संकेतित हैं। उन्हें अतीव धार्मिकता में अंध भक्ति आरती के थाल में सजा कर शताब्दियों से पूजती रही। फलःस्वरूप इन कथाओं में जो भविष्य के सूत्र हैं, उनकी गवेषणा और मीमांसा की ओर विद्वानों की दृष्टि कम ही गई। इसलिए समकालीन परिस्थितियाँ किसी आतंक की तरह भारतीय समाज को ही नहीं, विश्व जीवन को भी त्रस्त, आहत और अशांत करती आ रही हैं।

वस्तुतः समकालीन तरक्की के यांत्रिक वातावरण में संपूर्ण विश्व का अहसास, एक दुःखद काल दोष की तरह ही प्रतीत हो रहा है। आज संपूर्ण भूमंडल स्वयं को कहीं रावण और कहीं कंस के प्रकोप से बचाने के लिए किसी ऐसे ऋष्यमूक पर्वत की तलाश कर रहा है, जहाँ आतंक, आणविक शक्ति, अस्त्र-शस्त्र दुराचार, अनाचार, अतिचार, व्यभिचार, अत्याचार आदि को पहुँचने में संकोच एवं भय हो।

किंकर्तव्यविमूढ जनजीवन आज पुनः किसी राम और कृष्ण को ढूँढ रहा है, जो पृथ्वी के असुरों और आसुरी शक्तियों से उसकी रक्षा करने आयें। इतना ही नहीं, उनके शील, सौन्दर्य और शक्ति का रम्यता से वर्णन करने वाले वाल्मीकि, वेदव्यास, सूर और तुलसी आदि विलक्षण कवियों का प्रादुर्भाव हो, उनके साहित्य में विश्व की रक्षा करने वाले ईश्वर को प्रकट करने की शक्ति हो। उनके आराध्य के सौन्दर्य में मोहिनी हो, शील मे सभ्यता हो, और शक्ति में ऐसी क्षमता हो, जिसके दर्शन मात्र से विश्व जनसमूह आश्वस्त हो कर यह कह उठे - 'राम रमापति कर धनु लेहू, खैंचहू मिटे मोर संदेहू।'

राम और कृष्ण आज भी भारतीय आत्मा में रचे-बसे हैं। उनकी गुणवत्ता से संसार प्रभावित है। कदाचित् यही कारण है कि समकालीन उपन्यासकार, डॉ. नरेन्द्र कोहली की औपन्यासिक पृष्ठभूमि, भारतीय प्राचीन ग्रंथ - रामकथा, महाभारत और विभिन्न पुराण हैं। इन ग्रंथों में मानवीय कल्याण के चिर जाग्रत सूत्र हैं, और मंत्रों में व्याप्त भारतीयता की विजयगाथाएँ हैं। वह विराट व्याप्ति है, जिसमें जाति, धर्म, उपदेश, नीति, अध्यात्म, दर्शन आदि की अभिव्यंजना अपने विस्तार में इस तरह व्याख्यायित है, जो किसी भी संकीर्णता की सीमा से परे मानवमय और मानवता से पूर्ण वातावरण की स्थापना करती है।

डॉ. कोहली भारतीय होने के साथ-साथ भारतीयता को भलीभाँति जानते हैं। भारत की परम्परा, धर्म, नीति, दर्शन, इतिहास, अध्यात्म आदि में जो विश्लेषण हैं, और उससे प्रभावित जो भारतीय समाज है, उसका अध्ययन उनके उपन्यासों की पूँजी है। वास्तव में प्राचीन भारतीय साहित्य का महत्व केवल इतना ही नहीं है कि उसमें कलियुगांत के महाप्रलय में पापी, अधर्मी, दुष्कृत्यकारकों के विनष्ट होने की कथा है; वरन् उसकी महत्ता इसलिए है कि उसी अंत के किसी आदि स्थल पर वह युगपुरुष भी होगा, जो परित्राणाय साधुनाम के विशेषण से युक्त होगा तथा मार्कण्डेय ऋषि की तरह युगारंभ में संत सृजन को प्रलय पयोधि की सर्वग्रासी मत्युकुंडली से उद्धार कर नूतन रचना के लिए उत्प्रेरित करेगा। यदि मेरी गवेषणा सही है तो कोहली के उपन्यासों का महत्व इस दृष्किोण को भी सार्थक करता प्रतीत होता है।

भारतीय प्राचीन ग्रंथों का महत्व धार्मिक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं है। प्राकृतिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि की संरचना की दृष्टि से भी इनका महत्व अत्यधिक है। शंकराचार्य, रामानुज और चैतन्य से इतर कई मतावलम्बियों ने प्राचीन साहित्य और उसकी मान्यताओं को यों ही स्वीकार नहीं कर लिया था, बल्कि उनमें निहित तथ्यों को परख कर ही उनका प्रचार और प्रसार किया था। सच पूछें तो यह प्राचीन साहित्य की ही देन है, जिसके कारण पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण, जु ा हुआ है। धर्म के मर्मज्ञ गुरु नानक की स्मृतियाँ, बौद्ध, जैन मतों आदि की दार्शनिकता, और धार्मिकता जु ी हुई है। भारत के समान शायद ही कोई राष्ट्र विश्व में हो, जो ऐसी प्राचीन साहित्यिक समृद्धि से पूर्ण होगा और शायद ही ऐसा कोई देश होगा, जिसमें कठोर सनातनी और पूर्णतः धर्म-विरोधी जन शांतिपूर्वक एक साथ मिल कर रह रहे हों। दरअसल मानवीय धर्म, मानव के लिए अमृत है, और यही पौराणिक ग्रंथों की पूँजी है, जिसे अपनी विषय-वस्तु बना कर डॉ. कोहली अपने उपन्यासों में समकालीन परिप्रेक्ष्य और प्रसंगों के साथ विश्लेषित कर रहे हैं।

उपर्युक्त विवरण का उद्देश्य केवल भारतीय वा मय की महत्ता का प्रचार करना नहीं है, बल्कि आज के संदर्भों में उसके औचित्य पर विचार करना है। रामायण या महाभारत, किसी एक देश, किसी एक काल, एक जाति, एक समाज, एक परिवार और उसके आदर्श, सामन्जस्य, समन्वय आदि की विराट चेष्टा की कथा तक ही सीमित नहीं है। उनकी कथाओं में सम्पूर्ण विश्व मानव को प्रत्येक काल की बदलती हुई स्थिति-परिस्थिति में युगानुकूल दृष्टि और दिशा देने की अद्भुत क्षमता है।

भारतीय प्राचीन साहित्य की समन्वय क्षमता और एकता की अभूतपूर्व निष्ठा के कारण ही भारत सदियों से धर्मगुरुओं, आध्यात्मिक महापुरुषों दार्शनिकों, चिन्तकों, साहित्यिकों, विचारकों आदि को अपने सर्वोदय के सिद्धान्त की ओर आकृष्ट करता रहा है। महाभारत काल से ही विश्व के विभिन्न भागों से ब े-ब े वनों, निर्जनों, मरुभूमियों, पहा ों, विशाल नद-नदियों और समुद्रों को लाँघ कर यात्रियों के दल यहाँ आते रहे हैं; और इस देवभूमि के दर्शन कर, एक ऐसी दिशा और दृष्टि प्राप्त करते रहे हैं, जिसमें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ज्ञान-विज्ञान की महत्ता का अनमोल ऐश्वर्य भरा है।

प्राचीन भारतीय कला और साहित्य सह-अस्तित्व के वास्तविक दर्पण हैं। प्रायः सभी विशिष्ट भारतीय साहित्यकार इस तथ्य से परिचित हैं कि रामायण और महाभारत आदि ग्रंथ ऐसे राजनीतिक तथ्यों से आपूर्त हैं कि उनकी तुलना किसी अन्य साहित्य से संभव नहीं है। वर्तमान भारत की लोकसत्तात्मक व्यवस्था में उपर्युक्त साहित्य इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हो जाता है कि वह आज की स्थितियों-परिस्थितयों में भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना अतीत की स्थितियों में था।

इस परिप्रेक्ष्य और प्रासंगिकता को ध्यान में रख कर यह कहना अत्यधिक समीचीन होगा कि डॉ. नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों की पृष्ठभूमि इसीलिए रामकथा और महाभारत है। उन्होंने भारत के पौराणिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, नैतिक, राजनीतिक आदि भूमिकाओं को अपने उपन्यासों में इस प्रकार चित्रित किया है, जो सभी समकालीन भूमिकाओं का दर्पण प्रतीत होती हैं। मेरे कथन की सत्यता के लिए 'अवसर' में अभिव्यक्त डॉ. कोहली की यह उक्ति कितनी महत्वपूर्ण है :

'एक मार्ग यह भी है', राम ने स्वीकार किया, 'किंतु यदि यह मार्ग व्यावहारिक होता, तो कदाचित् दंडक वन को इतनी लम्बी प्रतीक्षा न करनी प ती। कोई भी सम्राट् यह कार्य कर चुका होता। लक्ष्मण ! सैनिक अभियानों से जन-सामान्य की असुविधाएँ दूर नहीं होतीं। सेना विजय दिला

सकती है, क्रांति नहीं ला सकती। प्रत्येक समस्या का समाधान सेना नहीं है। जन-क्रांति जन-जागृति से होती है, और उसकी आकांक्षा जनता के भीतर से उत्पन्न होती है। ऊपर से थोपी गई जन-क्रांतियाँ सदा निष्फल होती हैं।'

विश्व राजनीति के रंगमंच पर घटित समकालीन घटनाओं पर यदि विचार करें तो डॉ. नरेन्द्र कोहली के कथन की सत्यता अवश्य विचारणीय प्रतीत होगी। उनके कथन में राजनीतिक भूमिकाओं का मूल्य केवल यह नहीं है कि घटित घटनाएँ उद्घाटित हुई हैं। उनका मूल्य इस दृष्टि से भी है कि महाशक्ति की सैनिक क्रांति की उपलब्धि तब तक निष्फल है, जब तक वह जन-क्रांति, जन-जाग्रति के द्वारा प्राप्त न हो।

कई बार ऐसा होता है कि राजतंत्र की श्रृंखलाएँ टूटने के थो` ही समय के बाद संयम, सम्मान और अनुशासन की श्रृंखलाएँ भी टूट जाती हैं। गणराज्य बनने और मताधिकार की नींव डालने की खुशी में लोग यह भी भूल जाते हैं कि राजनीति के ही मसले में महाशक्ति का हस्तक्षेप, उनकी नीति और न्याय को कभी हल्का-भारी भी करने लगेगा। वस्तुतः आज की महाशक्ति पुनः कंस की उत्पत्ति का कारण बन गई है और अपनी सफलता के मार्ग में आने वाली नीति और न्याय की सभी बाधाओं को कुचलने में लगी हुई है। यदि विश्व राजनीति में, केवल सफलता ही उचित-अनुचित की कसौटी बन जाये, तब मानव मूल्यों के भविष्य की चिन्ता किसे होगी? इस प्रवृत्ति के प्रतिकार के लिए ही डॉ. नरेन्द्र कोहली ने 'अवसर' में यह नीतियुक्त वचन कहा है :

'दुष्ट संचित धन, हिंसक पशुबल, तथा भ्रष्ट राजनीतिक सत्ता की पुंजिभूत कृति, इस राक्षसी प्रवृत्ति को यदि न रोका गया, तो वह आश्रमों को तो क्या, समस्त आर्यावर्त्त और देवभूमि को भी ग्रस लेगी। पहले तो सुमाली के भाई-बंधु ही राक्षस थे, अब अनेक यक्ष, गंधर्व, किरात तथा आर्य भी राक्षस होते जा रहे हैं।'

एक अजीब कशमकश, एक अव्यक्त द्विधा में व्यक्ति की चेतना आज किंकर्तव्यविमूढ़-सी चौराहे पर ख ी है। ब`-ब` कारखाने बने, नई-नई मशीनों से अत्याधुनिक सभ्यता का विकास हुआ। यहाँ तक कि 'रोबो' मनुष्य के मस्तिष्क का स्थान लेने लगा। कंप्यूटर करामात दिखाने लगा है। तब मनुष्य सोचने लगा है, अब उसका उपयोग ही क्या शेष बचा है। यही वह परिस्थिति है, जो उसके अन्तर्मन में आज निष्कासन की भावना भर कर उसे अकेला बना रही है। किंतु प्रगति की तेज रफ्तार में हम यह भूल ही गये कि अकेलापन ही बर्बरता का कारण है। और बर्बरता आज सभ्यता के लिबास में चैतन्य होने लगी है। इसीलिए अमन की धरती पर आतंक विनाश के बम फो रहा है। ऐसे में हमारा प्राचीन साहित्य ही हमें मार्ग दिखा सकने में समर्थ है। डॉ. कोहली के मतानुसार - 'महाभारत की मान्यता है कि वस्तुतः हत्याओं का व्यापार भूखे-नंगे, निर्धन लोगों ने कम ही किया है, यह तो सत्ता-लोलुप, शक्तिशाली लोगों का काम ही अधिक रहा है। मध्य काल में योरोप के राष्ट्रों ने एशिया, अफ्रीका, अमरीका तथा आस्ट्रेलिया में, जितनी हत्याएँ की हैं, वे न्याय अथवा धर्म की स्थापना के लिए नहीं थीं। वे अपनी शक्ति के अहंकार, और सत्ता-संपदा के लोभ में किये गये कृत्य हैं। मध्य काल में जिस समय धार्मिक साम्राज्यों ने अपने विस्तार के लिए युद्ध छे` और संहार किया, वह भी किसी अन्याय के विरुद्ध नहीं, अपनी सत्ता की स्थापना के लिए किया था। आज भी आतंकवाद के नाम पर जो नर-संहार हो रहा है, या अधिक शक्तिशाली देश, दुर्बल देशों का दमन कर रहे हैं, वह जरासंध, कालयवन, वाणासुर के कृत्यों से ही नहीं, धृतराष्ट्र और दुर्योधन के अनाचारों से भी भिन्न नहीं है। आप खुली आँखों से महाभारत पढ़ने बैठेंगे, तो उसमें अपने देश और काल को ही प्रतिबिम्बित पायेंगे।'

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय प्राचीन साहित्य में दूरदर्शिता, दिशानिर्देशन की क्षमता, भूत, वर्तमान और भविष्य की दृष्टि, राजनीति-कूटनीति की वैचारिकता, समन्वय की क्षमता, एकता आदि की निष्ठा, प्रचुरता से प्राप्त होती है। अनेक सदियों से सुरक्षित इन ग्रंथों में मानव और मानवता से पूर्ण ऐसी कथाएँ हैं, जो कदाचित् आत्मलीन, अहंवादी, अत्याधुनिक बौद्धिकों के गर्व को चूर करने के लिए उपयुक्त हैं; और यही डॉ. नरेन्द्र कोहली के उपन्यास साहित्य की पृष्ठभूमि भी है।

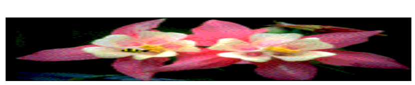

नगाधिप

डा. परेश

ओ अभीप्स्य ! मन के उबाल निष्कंप धवल सीमंत ज्वाल
शत् संकल्पों के ऊर्ध्व स्तूप
ओ यज्ञरूप ! ओ यज्ञयूप
तुम पर्जन्यों के अमर स्त्रोत
वसुधा विभवों से ओतप्रोत
उत्तराखंड के लोकपाल मेरे नगपति ! मेरे विशाल
तुम हो विराट् ओ महाराट
तुमसे ही गंगा का घराट
अंतस् की ममता, सरिताएँ
बन कर फूटी युग-वल्गाएँ
सीमा पर फैले हो अराल ओ ज्योतिपीठ ! ओ राष्ट्रभाल
विजिगीषु-वृत्ति के अडिग अटल
ओ लौह-पुरुष ! ओ वज्र-पटल
ओ गर्व-दीप्त ! ओ स्फीत-शिखर
अरि-व्यूह बिखरता सिहर-सिहर
शिव के पिनाक तुम कश कराल ओ ऊर्ध्व-वीर्य ! ओ क्रुद्ध व्याल
माँ के त्रिशूल के धवल फलक
तुम हो प्रहेलिका गुँथी अलक
शाश्वत् विजयों के दृष्ट-केतु
संस्कृतियों के इतिहास-सेतु
आजानु-लंब भुज-खड्ग-जाल तुम शक्तिपीठ, देश की ढाल
ओ चरम तीर्थ ! ओ परम पर्व
तव दर्शनेन ही अहं खर्व
तुम ही पुराण, उपनिषद् सर्व
ऋक् साम, यजुर् तुम ही अथर्व
तुम में श्रद्धा का ग्रंथि-जाल तुम पवित्रता के उषःकाल

अनोखा रिश्ता

करुणा श्री

ट्रेन अपनी गति से दौ ती चली जा रही थी। अवनिका नीचे की बर्थ पर अकेली ही अपने विचारों में खोयी हुई सफ़र का आनन्द ले रही थी। यात्री आ-जा रहे थे। बीच-बीच में चाय, कॉफी, समोसा की आवाज़ भी खनक जाती थी। एकाएक ट्रेन की गति धीमी हुई। अवनिका की विचार की लर्ा यों में ढीलापन आया और उसने खि की की ओर झाँका तो भी -सी नज़र आयी। एकटक देखती रही। ट्रेन बिलकुल रुक चुकी थी। अधिकांश यात्री अपने-अपने कम्पार्टमेंण्ट से बाहर निकल चुके थे। पटरी के किनारे तीन शवों के चिथ` बिखरे प` थे। पास ही सात-आठ साल की ल की सुबक रही थी। 'माँ-माँ' कह कर रो रही थी। पास दूसरी लाइन पर मालगा ी भी ख ी थी। सभी यात्रियों को आभास हो गया था कि यह एक्सीडेण्ट इसी से हुआ है। लेकिन अवनिका खामोश-सी भी की भिनभिनाहट सुन रही थी। पर ट्रेन से उतरी नहीं, पास बैठे परिवार से ही पूछ लिया।

सभी यात्री द ुखी थे। गरीब महिला थी, जो अपने बच्चों के संसार छो चुकी थी। पास में ख ी ल की से कोई पूछ रहा था - 'क्या तुम्हारी माँ थी? कैसे कट गयी?' ल की का रुदन और तेज हो गया। ब ी मुश्किल के बाद उसका रोना कम हुआ ओर बोली - 'मेरे लिये रोटी माँगने जा रही थी और पटरी को पार करते समय गिर गयी और बंशी, हँसी के साथ ट्रेन के नीचे आ गयी। किसी वृद्ध ने पूछा - 'बेटी, पिता कहाँ हैं?'

'मेरे पिता भी मर गये हैं। यह मेरी माँ नहीं थी। मुझे मेले में से लायी थी। मैं मेले में गुम हो गयी थी। अपने चाचा के साथ गाँव से आयी थी। चाचा मेरे लिये गुब्बारा लेने गये थे, फिर वापस नहीं आये। मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। तभी शांता काकी ने मुझे देख लिया और अपने साथ घर ले आयी। उस दिन से मैं शांता काकी के साथ ही रह रही हूँ। आज लकर्ा याँ नहीं मिली थीं। इसलिए हम सब के लिए स्टेशन से रोटी लेने जा रही थी। अब मुझे कौन रोटी देगा? मेरे माँ-बापू भी नहीं हैं। बाबूजी मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को दे दो।' अबोध बाला भी से रोटी की भीख माँग रही थी। अचानक ट्रेन की सीटी बजी, ट्रेन ने धीरे-धीरे गति लेना शुरू किया। पता नहीं अवनिका को क्या सूझा, शीघ्र उठ कर गेट के करीब पहुँच ज़ोर से चीखी -'भइया, इस बाला को मुझे सौंप दो।' एक यात्री ने शीघ्र ल की को उठाया और अवनिका की ओर बढ़ा दिया। अवनिका ने धीमी गति की रफ़्तार से ल की को अपने कम्पार्टमेंण्ट की ओर खींच लिया और अपने हृदय से लगा लिया ओर बोली `'मैं भी शांता काकी की तरह हूँ। चलो मेरे साथ रहना। तुम्हें भूख लगी है, चलो . . . ।' इतना कह कर उसने अपनी बर्थ के पास बिठा दिया और टिफ़िन खोल कर खाना दिया। ल की सहमी-सी खाना खाने लगी। अन्य बर्थ के यात्री, सब देख रहे थे। अवनिका की ममता-दया ओर सहजता को लेकर सब खुश थे। मानो उस अबोध बाला को उसकी खोयी हुई माँ पुनः मिल गयी हो। शांता काकी की तरह, लालन-पालन करने वाली माँ।

रिश्ते जो` जाते हैं

शशिप्रकाश पाराशर

कितने नाते बनते हैं और कितने वादे होते हैं
कितने प्यारे बनते हैं और कितने सांझे होते हैं
रातों के नाते रातों तक, अपनों के वादे अपनों तक
सपनों के वादे सपनों तक, प्यालों के सांझे प्यालों तक
ये नाते, वादे, प्यारे, सांझे एक दिन मुख मो` जाते हैं
और समय के साथ-साथ ये रिश्ते जो` जाते हैं।

नाते भी भूले जाते हैं, वादे भी झूठे प ते हैं
प्यारे भी वैरी बनते हैं, सांझे भी तो` जाते हैं
इस हँसी-खुशी की दुनिया में ये सारे रो` आते हैं
और सभी समय के साथ-साथ ये रिश्ते जो` जाते हैं।

कुछ अरमानों की ख़ास कसक
जब दिल को देती मसक-मसक
और भूचालों की एक धमक
धरती को देती धसक-धसक
तब अरमानों और भूचालों के कुछ माने जो` जाते हैं
और सभी समय के साथ-साथ ये रिश्ते जो` जाते हैं।

होटल ताज

महेन्द्र कुमार सिरोठिया

कल और आज होटल ताज

हिन्दुस्तान की बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर, हिन्द का नाज़
भारत की आर्थिक राजधानी की सरताज़ धरोहर
पिछली एक सदी से, अरब सागर, इंडिया गेट के साथ
ख ा है अविचल, अडिग, अटल, अजय 'होटल ताज'
जिसे ब्रिटिश शासन काल में आज़ादी के पहले
एक सौ पाँच बरस पहले, सर जमशेद जी टाटा ने
ब` अरमान से स्वप्नों का नायाब तोहफा
दिया था हिन्दुस्तान को
जहाँ राजे-रजबाडों, विदेशी राजनयिकों नाम-चीन हस्तियों की
विदेशी विश्व भर के पर्यटक सैलानियों की होती थी यादगार मेज़बानी
हर दिल अज़ीज़ की पहली पसंद था 'होटल ताज'
जहाँ गुलज़ार हुए जश्न के ऐतिहासिक पल
पिछली एक सदी से 'होटल ताज'
सजता-सँवरता था नयी नवेली दुल्हन की तरह
जहाँ रोशन होते थे खूबसूरत झा -फानूस
नयनाभिराम, कलात्मक सांस्कृतिक धरोहर बिखरी हुई थी
जहाँ थे मनमोहक मुग़लकालीन गलीचे कालीन
बिखरे होते थे सदा खुशियों के पल
चहकते मुस्कुराते चेहरे, जलतरंग की सरगम
संगीत की स्वर-लहरियाँ, जहाँ फैली थी
दुग्ध-धवल चाँदनी, चौंधियाती रोशनियाँ
जहाँ मनाया जाता था ज़श्न विवाह समारोह का
सालगिरह का, जहाँ होता था ज़श्न का भोज
विश्व भर के सैलानियों का सुकून का था बसेरा
जहाँ परोसे जाते थे हर मुल्क़ के सुस्वाद भोज
जहाँ मनाया जाता था हर मज़हब के त्योहार का ज़श्न
'होटल ताज' के खूबसूरत बुर्ज़ पर था
हज़ारों परिन्दों का सुकून का रैन-बसेरा
'होटल ताज' १०५ बरस बाद भी ख ा था बाँका जवान-सा
शानो-शौकत, शाही रौनक के साथ पूरे शबाब पर
खुशियों से सराबोर ज़श्न में डूबा था
हर खुशनुमा शाम की तरह रंगत में नज़ाकत से
वो मनहूस २६/११ की शाम का ख़ौफनाक दुःखद पल
जहाँ अकस्मात् आतंक के डरावने डैने फैलाकर
आ गया आतंक का बाज़
जहाँ सुकून की खुशनुमा शाम को गिरी
आतंक की ख़ौफनाक गाज़
ख़ौफनाक भयावह मंज़र, कुछ आतंक का अनकहा राज़

आतंक की दहशत-गर्दी में ग़मगीन बेबस था 'होटल ताज'
जहाँ उजा ी जा रही थीं हँसती-खेलती ज़िन्दगियाँ
खेली जा रही थी ख़ून की होली

शैतानियत का नंगा नाच, मौत का तांडव

हर लम्हा हैवानियत की चरम-सीमा
जहाँ फैला था बम विस्फोट का गंध धुआँ
आग की लपटें, चप्पे-चप्पे पर मौत का साया
तिल-तिल करते जान गँवाते लोग
वो ६० घंटे का अनवरत ख़ौफनाक पल
अपनों को मरता देखने की बेबसी
भूख-प्यास से बेकल बंधक
सूख चुके आँसू, उख ती साँसें, साक्षात् मौत का तांडव
ल रहा था 'होटल ताज' अपने अस्तित्व की ल ाई
आतंक की दहशत ने
झकझोर दिया था पूरे विश्व को
इंसानियत को अंदर तक, दिल दहलाता हर पल
जमशेद जी का सपना 'होटल ताज'
बन गया था युद्ध की रणभूमि
कभी सोचा न होगा जमशेद जी टाटा ने
जब नींव रखी गयी थी 'होटल ताज' की
'होटल ताज' बंधक बेबस था आज
सम्पूर्ण विश्व लगातार ६० घंटे
देखना चाहता था 'होटल ताज' की
हर हलचल, दिल, साँसें थाम कर
टकटकी लगाकर, प्रेस मीडिया
दिखाना चाहता था हर कोण से, हर पल को
लेना चाहता था हर आहट की टोह
एक अरब भारतवासी देखना चाहता था
'होटल ताज' की हर साँस को, हर गतिविधि को
व्यथित, चिंतातुर, भयाक्रांत, क्रोध से बेबस
लेना चाहते थे राहत की साँस
'होटल ताज' की आज़ादी की
'होटल ताज' ल रहा था अनवरत ६० घंटे तक
अजय अविचल जूझ रहा था दहशतगर्दों से
वाक़ई हिन्द का नाज़ 'होटल ताज'
आज अजय फिर ख ा है 'होटल ताज'
फिर सँजने-सँवरने, आतुर मेज़बानी को
अपने मेहमानों की
सर जमशेद जी टाटा का सपना 'होटल ताज'
नमन 'होटल ताज' नमन।

एक उत्सव भी है हिन्दी

नरेश शांडिल्य

हिन्दी भाषा का ज़िक्र आते ही हिन्दी के अधिकांश विद्वान-चिन्तक-विचारक 'हिन्दी का रोना' शुरू कर देते हैं - हिन्दी के लिए ये नहीं हुआ, हिन्दी के लिए वो नहीं हुआ, अगर यूँ हो जाता तो यूँ हो जाता, अगर ऐसा नहीं होता तो वैसा नहीं होता। हिन्दी भी संस्कृत की तरह हाशिये पर न आ जाये, हिन्दी वाले ही हिन्दी के दुश्मन हो रहे हैं। अँग्रेज़ी रहेगी तो हिन्दी कैसे आयेगी? देखो 'हिन्गलिश' बनती जा रही है हिन्दी। रंग-रूप बिग रहा है हिन्दी का। नई पीढ़ी के पास कैसे पहुँचेगी हिन्दी, हाय-हाय, अब हिन्दी का क्या होगा? इत्यादि-इत्यादि न जाने कितने प्रश्न, कितनी चिन्ताएँ, सामने रख दी जाती हैं। ऐसा भी नहीं है कि ये प्रश्न और चिन्ताएँ ज़ायज़ नहीं हैं। हैं, ज़ायज़ भी हैं, चिन्तनीय भी हैं, विचारणीय भी हैं। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि हिन्दी की चुनरी में सफलता के अनमोल चाँद-सितारे न ज` हों। या कि हिन्दी के रास्ते में अँधेरा ही अँधेरा हो। फिर भी यथार्थ की कटुताएँ अपनी जगह हैं और ख़्वाबों का आस्वाद अपनी जगह।

ज़िन्दगी रोज़-रोज़ का रोना ही नहीं, एक उत्सव भी है। हमारी संस्कृति मूलतः लोक परम्पराओं से जु ी है जिसमें ज़िन्दगी की तल्ख़ियों का जवाब हम उत्सव और उल्लास से देते आये हैं। सम्भवतः इस सबके कारण ही कला, साहित्य, नृत्य, संगीत, तीज-त्योहार जीवन्त रूप से हमारे मन-वचन-कर्म में शामिल हैं। हमने राम की दर्द-भरी कहानी को भी 'रामलीला' के रूप में उत्सव बना कर गली-गली, नुक्क -नुक्क तक विस्तार दिया है। रोम जब जल रहा हो तो हम नीरो की तरह बाँसुरी नहीं बजाते बल्कि हम गेंद खेलते-खेलते कालिया-नाग को कुचलना भी जानते हैं। हम आनन्द और उल्लास का 'महारास' भी रचाते हैं और जन-जन को कंस के अत्याचारों से मुक्त कराना भी जानते हैं। हरबोले बुन्देलों की तरह हम रात को मस्ती में 'आल्हा' भी गाते हैं और दिन में फिरंगियों के छक्के भी छु ाना जानते हैं। हमारी संस्कृति और इतिहास गवाही देते हैं कि हम लोकधर्मी हैं, हम उत्सवधर्मी हैं। शायद इसीलिए हम, हम हैं। हिन्दी के 'उजले पक्ष' की ओर दृष्टि डालें तो हिन्दी एक वैश्विक भाषा के रूप में निरन्तर हमारे सामने आ रही है। आज विश्व के पचास से अधिक देशों के पाँच सौ से अधिक शैक्षिक केन्द्रों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। कई देशों में तो हिन्दी स्नातकोत्तर स्तर तक पढ़ाई जाती है। हिन्दी साहित्य की अनेकानेक कृतियों का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और धीरे-धीरे इस स्थिति में और भी विस्तार हो रहा है। विश्व की अनेक भाषाओं के साथ मिल कर हिन्दी के अनेक शब्दकोष तैयार हुए हैं जिससे विदेशी विद्वानों द्वारा हिन्दी में मौलिक लेखन को काफी बल मिलेगा। अब तक हिन्दी के आठ 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' आयोजित हो चुके हैं। आठवाँ 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' न्यूयॉर्क में आयोजित हुआ है। इस सब को विहंगम दृष्टि से देखें तो हिन्दी की एक उत्साहजनक तस्वीर हमारे सामने उभर कर आती है। देर-सबेर हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की सूची में स्थान मिलना भी तय-सा लगता है। ऐसे माहौल में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी उत्सवों और सम्मेलनों की सार्थकता का अलग ही महत्व है।

आओ, हिन्दी को उत्सव की तरह भी अपनाना सीखें।

लगन

दुबे उमादत्त अनजान

राह वह है जो दूर को भी पास बना देती है,
चाह वह है जो गैर को भी ख़ास बना लेती है,
किस्मत को कोसते हो क्यों तदबीर के हेठो -
लगी वह है जो आग पानी में लगा देती है।

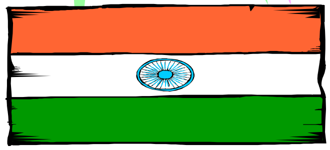

कारगिल के शहीद

शकुन्तला पाराशर

वीरों ! जन्म के समय नाल कटते देख,
तुम्हें बलिदान का भान हुआ होगा।
माँ के आँचल तले थपकियाँ सुनते हुए,
दूध की लाज रखने का ज्ञान हुआ होगा।
शहीदों की जीवन-गाथाओं ने तुम्हें,
मर मिटने को उकसाया होगा।
युद्ध भूमि में ल ते समय तुम्हें,
तिरंगा झण्डा याद आया होगा।
उसी झण्डे के मान के लिए तुम,
दुरुह पर्वतों पर चढ़ते गए।
बर्फ़ीली ज़मीन और रक्त जमाती ठण्ड में,
वार पर वार सहते रहे।
शत्रुओं की गोलियों का निशाना बनते रहे,
खून से लथपथ होते रहे।
शत्रुओं को तहस-नहस कर,
आप भी रक्त-रंजित हो गए।
अंत में तिरंगे की लाज के लिए
स्वर्ग को प्रस्थित हो गए।
आज उसी तिरंगे ने ब` प्यार से,
तुम्हें अपने में समेट लिया है।
तुम्हारे क्षत-विक्षत शरीर को,
अपने हृदय से लगा लिया है।
आज पूरे देश को तुम पर गर्व है,
पर सबसे अधिक गर्वोन्नत है तिरंगा,
जो तुम्हारी यशो-गाथा गा रहा है,
लाल किले पर गर्व से लहरा रहा है।

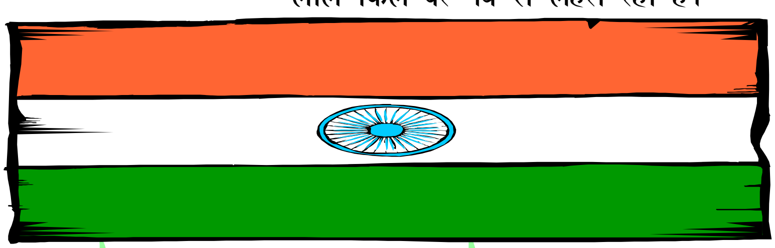

माँ के लिए

डॉ. सरला अग्रवाल

'राजिता, हम लोग इण्डिया चलेंगे, वहीं जा कर रहेंगे अब।' अनिरुद्ध ने उत्साह से कहा था।

'लेकिन क्यों अनि?' राजिता हैरान थी।

'बस, देश जाने का मन होता है अब, बहुत याद आती है मुझे वहाँ की। फिर, अब डैडी भी नहीं रहे, मम्मा वहाँ पर अकेली हैं, न जाने कैसे अपने दिन गुज़ारती होंगी बेचारी।'

'पर हम दोनों का कम्प्यूटर डिजायनिंग का जॉब?'

'अरे यार ! इण्डिया में खोज लेंगे, काम करने वालों को कहीं भी काम की कमी नहीं होती। फिर अब तो उदारीकरण का ज़माना है, ब ी-ब ी मल्टीनैशनल कम्पनियाँ इण्डिया में पैर जमा रही हैं, वे पे भी बहुत अच्छा करती हैं।'

'पर अनि, यहाँ जितना वेतन तो नहीं मिलेगा, यह मान कर चलो तुम।' राजिता ने त प कर कहा।

'तुम्हारा यह कहना तो एकदम सही है राजी, पर यह भी तो सोचो कि इण्डिया में कॉस्ट ऑफ लिविंग भी यहाँ से काफी कम है। रेश्यो वही प ेगा। वहाँ हर ओर अपने लोग दिखाई देंगे। प्रेम, प्यार, सम्मान भी, यहाँ कौन किसको पूछता है?'

'ओह शिट ! यह सब तो कुछ ही समय का दिखावा होता है...तुम पहले भी तो गये थे, है न?'

'पहले? मेरा जन्म ही वहाँ हुआ है। मेरी पूरी एजूकेशन वहीं हुई है....सिर्फ़ मास्टर्स डिग्री यहाँ पढ़ाई करके ली है तुम्हारे साथ....वह भी सरकार ने अपने खर्चे से भेज दिया स्कॉलरशिप देकर, अब मेरा भी तो कुछ फ़र्ज है?'

'अनि तुम बहुत स्वार्थी हो...है न?'

'अरे, यह क्या कह रही हो तुम?'

'और क्या कहूँ', वह तमक कर बोली, 'केवल अपने विषय में ही सोचते हो, औरों के विषय में नहीं...मैं तो हमेशा से यहीं पली-बढ़ी हूँ, यहीं जन्मी हूँ, मेरे पेरेन्ट्स भी यहीं है, भाई-बहन भी यहीं हैं, पूरा परिवार भी यहीं है...इण्डिया में मेरा कौन है भला? एक बार वहाँ जा कर बस जायेंगे तो यहाँ कब-कब आना होगा? क्यों आयेंगे?'

'ओ माई डियर वाइफ़ ! अपने पति की इच्छा का सम्मान करना सीखो भारतीय हाउस वाइफ़ की तरह।'

'अनि, इफ यू आर सीरियस एबाउट इट (यदि तुम इसके लिए गंभीर हो) तो तुम अपने निर्णय को एक बार फिर व्यावहारिक हो कर सोचो।' राजिता ने कहा।

'हर निर्णय को अर्थ की तुला पर तौलते रहेंगे तो ह्यूमन वैल्यूज़ (मानव मूल्यों) का क्या होगा? नाते-रिश्ते कैसे निबाहेंगे?'

'तो शादी से पहले ही कह देते यह बात।' राजिता के अश्रु बह चले थे।

'यह तो अण्डरस्टुड ही था। शादी के बाद तो सभी ल कियाँ अपने ससुराल जाती हैं, चाहे देश में या विदेश में, जहाँ भी पति रहे। अच्छा, यदि कह देता तो क्या तुम मुझसे प्यार नहीं करतीं? यहाँ रहने वाला इण्डिन ल का देख कर ही तुमने मुझे फँसा लिया।' कह कर अनिरुद्ध मुस्कुराया और राजिता के मुख पर अपने कथन की प्रतिक्रिया देखने के लिए उसी ओर देखने लगा था।

'अरे कैसी बातें करते हो अनि? यहाँ बहुत सारे इण्डियन बॉयज़ हैं जो अपने पेरेन्ट्स से दूर यहीं रहते हैं, वे भी हैं जो मेरी तरह यहीं पर पल-बढ़कर ब े हुए हैं।'

'तो तुमने उन्हीं से शादी कर ली होती।'

'अब फालतू बातें मत करो, मुझे गुस्सा आना शुरू हो गया है। चुपचाप आफिस के लिए तैयार हो जाओ।'

'अरे यार ! आज तो सैटरडे है, भूल गईं क्या?' अनिरुद्ध ने राजिता की कमर में हाथ डालते हुए कहा; 'चलो आज कहीं बाहर चलते हैं, लाइफ एन्जॉय करेंगे।'

'पर यह बात यहीं क्लीयर होनी चाहिये।'

'कौनसी?' अनिरुद्ध मुस्कुराया।

'अनजान मत बनो, तुम अच्छी तरह समझ रहे हो कि मैं किस बात के लिए कह रही हूँ... ये इण्डिया चलने वाली बात....।' राजिता चिढ़ गई।

'क्लीयर ही कह रहा हूँ मैं तो, मुझे तो वहाँ जाना ही है या फिर मम्मा को यहीं बुलाऊँगा अपने पास। अब उन्हें वहाँ अकेले नहीं छो सकता। राजिता, यू नो माई मदर्स नेचर ! वह हर किसी के साथ एडजस्ट नहीं हो सकतीं। वह धार्मिक किस्म की महिला हैं, पूजा-पाठी। वह तो हर समय पूजा में ही व्यस्त रहती हैं। काम एण्ड क्वायट लेडी ! (शांत मौन महिला)'

'ठीक है, तुम अपनी मदर को यहीं बुला लो।' राजिता ने उत्तर दिया और वहाँ से उठ कर चल दी।

अनिरुद्ध वहीं बैठा रहा। उसका मन तो अपने प्यारे देश में पहुँच गया था। उसे अपने पिता की याद आ गई....कितना स्नेह देते थे वह उसे....ऑफिस से आकर पूरा समय उसी के साथ व्यतीत करते थे। कभी उसे अपने मन की बातें बताते, कभी अपने कार्यालय की....कभी उसके स्कूल, टीचर्स और मित्रों के विषय में पूछते।

उसके डैडी पहा पर एक बहुत अच्छी सरकारी कम्पनी में कार्यरत थे। उसकी पढ़ाई के लिए ही उन्होंने वह संघर्षमय जीवन स्वीकार किया था क्योंकि वहाँ का स्कूल देश का एक नामी-गिरामी स्कूल था। उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य अपने इकलौते बेटे को हिमालय जैसी ऊँचाइयाँ देने का बना लिया था।

उस कम्पनी में देशी और पहा ी लोगों की हमेशा टक्कर होती थी। वहाँ के पहा ी लोग मैदान से आये लोगों को कम्पनी में टिकने नहीं देते थे। उन पर नये-नये झूठे लांछन लगा कर या उनके विरुद्ध कोई न कोई मार्चा बाँध कर कम्पनी से निकलवा कर ही मानते थे। उन्हें बात-बात पर नीचा दिखाया जाता था और कई प्रकार से प्रता ित किया जाता था। दो-तीन बार तो डैडी का इन्क्रीमेण्ट तक रोक दिया था।

उसके डैडी की एक आँख बचपन में ही खेल के दौरान चली गई थी। केवल एक ही आँख से सारा पढ़ना-लिखना, काम-काज तथा कार्यालय के कार्य वह करते रहे। ऐज़ ए प्राइवेट कैंडीडेट वे बराबर स्वयं पढ़ाई करके परीक्षा पास करते रहे। अपने सहकर्मियों तथा बॉस का बुरा व्यवहार सहते हुए भी डैडी वहाँ कार्य करते रहे थे, क्योंकि अपने पुत्र को वे अपने से अलग कर हॉस्टल में नहीं रखना चाहते थे।

ईश्वर की अद्‌भुत लीला....उसके डैडी का सिर औसत से कुछ छोटा था पर ज्ञान और विवेक औसत से कहीं अधिक। उनकी सोच बहुत ही स्पष्ट और परिपक्व थी। वे ईश्वर की दी हुई अपनी खण्डित पर्सनैलिटी के साथ भी लगातार बिना रुके, बिना थके आगे की पढ़ाई करके अपनी योग्यता बढ़ाते रहे थे। विभागीय प्रतियोगिताओं को सदैव प्रथम रैंक में उत्तीर्ण करते रहे। फिर माँ के सनकी व्यवहार को भी डैड ने सहा....उन्होंने माँ के सनकी मिज़ाज के साथ समझौता करते हुए बहुत ही द ुखी जीवन व्यतीत किया था....वे उसे एक ब ा आदमी और अच्छा इंसान बनाना चाहते थे। ऐसे स्नेहिल और कर्तव्यनिष्ठ पिता और माँ के प्रति क्या उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं? उनके त्याग, तपस्या के बल पर पढ़-लिख कर क्या वह स्वार्थ में अंधा हो कर उनकी ओर से आँखे मूँद ले?

जब उसने यू.एस.ए. में कम्प्यूटर इंजीनियरिंग की सर्वोच्च पढ़ाई प्रथम श्रेणी में पास करके अवार्ड पाया था तब उसे हार्दिक बधाई देते हुए वे फोन पर रो प े थे....बेटा अनु, मैं तुझे आर्शीवाद देता हूँ, बेटा तुमने अपने पुरुषार्थ से अपने पिता का सपना साकार कर दिया है। आज की तारीख में मेरे सब भाई-बहनों की एक से एक लायक और योग्य संतानों में मेरा बेटा टॉप पर है। पढ़ाई में भी, और भविष्य में पाने वाले वेतन में भी आगे रहेगा। मुझे इस बात की बहुत खुशी है....पर बेटा, जीवन में कभी भी अहंकार मत करना, अपने बॉस और सहकर्मियों के साथ सदैव मिल-जुलकर रहना,

पर स्वाभिमान के साथ, जैसे तुम्हारा पिता रहा है अब तक। कितना संघर्ष किया है मैंने अपने जीवन में आगे बढ़ते रहने के लिए।'

'डैडी, मैं भारत आ रहा हूँ. . . .आप दोनों को लेने के लिए, आप तैयार रहना प्लीज़, हम सब पूरी दुनिया की सैर करेंगे। मैंने आपका और मम्मी का पासपोर्ट और वीज़ा बनवा लिया है।' अनिरुद्ध ने प्रसन्नता से कहा था।

'बेटा, पैसा बहुत मेहनत से कमाया जाता है, इसे सँभाल कर रखो. . . .क्या करेंगे हम दुनिया की सैर करके, बता? इसी मनी से तुम कल को अपनी शादी करके घर बसा लेना, एक मकान खरीद लेना, तुम्हारी माँ तो अब 'बहू' के सपने लेने लगी है। जल्दी से यहाँ आ जाओ और कोई ल की पसंद करके शादी कर लो। वहाँ पर पसंद आ रही हो तो वहीं कर लेना। रखता हूँ फोन . . . .खूब प्यार। सफलता तुम्हारे चरण चूमे।'

डैडी की बातें याद करते हुए अनिरुद्ध के नेत्र सजल हो उठे थे। कितने स्नेहिल, कितने अण्डरस्टैन्डिंग, कितने महान थे उसके डैडी।

उसी के बाद अपनी जॉब से दो-तीन माह के रुपये लेकर वह भारत गया था. . . .और अपने साथ मम्मा और डैड को ले आया था। उन्हें उसने अपनी वर्कप्लेस और अपार्टमेण्ट सब दिखाया था. . पूरी दुनिया घुमाई थी. . . .फ्रांस, इटली, शिकागो, जर्मनी, स्पेन तथा इँग्लैण्ड भी। महीना भर उनके साथ व्यतीत किया था। माँ और पिताजी दोनों ही बेहद खुश थे यहाँ के साफ-सफाई और नियम-कायदे वाले परिवेश में। पर यहाँ हमेशा के लिए रहने के लिए क़तई तैयार नहीं थे। बहुत रोकने पर भी वे यहाँ नहीं रुके थे। डैड तो रिटायर हो चुके थे। अब वे लोग अपने पैतृक घर में जा कर रह रहे थे जो ग़ाज़ियाबाद में था, भारत की राजधानी दिल्ली से एकदम सटा हुआ। एक विकासशील नगर।

वह उन्हें अपने साथ अमेरिका में रहने के लिए जोर डाल रहा था, पर इसके लिए वे दोनों ही तैयार नहीं थे। डैड का कहना था, 'बेटा, अपनी भाषा, अपना देश, अपने लोग. . . .इन्हें कभी भी छो ा नहीं जाता, इन्हें अपनाया जाता है। ये जीवन के लिए अनमोल हैं। वहाँ तो कोई रुपया कमाने मात्र के लिए ही जाकर रह सकता है, पूरा जीवन व्यतीत करने और जीवन के आनन्द के लिए नहीं। फिर अपने अंतिम समय में तो इंसान अपने देश, अपनी ज़मीन और अपने घर पर ही प्राण त्यागना चाहता है।' डैड का कहना सही था।

इधर कुछ समय से वह राजिता के सम्पर्क में आया था। वह अनि के साथ पढ़ी थी और अब उसी कार्यालय में कार्यरत थी। एक कुशाग्र बुद्धि, परिश्रमी, समझदार और सुन्दर युवती. . . .भाषा और विचारों का साम्य होने के कारण दोपहर का ब्रीफ लंच वे अब साथ ही लेने लगे थे।

दोनों का स्वदेश एक ही होने के कारण संस्कृति भी समान थी, पर राजिता आरम्भ से ही अमेरिका में जन्मी, पली और बढ़ी थी, इस कारण उसके आचार-विचार और व्यवहार में खुलापन और अँग्रेजियत अधिक थी। वहाँ के बच्चे अपने माता-पिता, भाई-बहनों और परिजनों के प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं समझते। वहाँ का जीवन केवल अपने लिए ही है. . . .अपने तक सीमित।

यद्यपि कि राजिता के माता-पिता अपने बच्चों का काफी ध्यान रखते थे, उन्हें अमेरिकन संस्कृति के खुलेपन से बचाये रखने का उनका प्रयास हर समय ही बना रहता था, फिर भी दोनों बच्चे ब े होने पर वहीं की संस्कृति से अधिक प्रभावित थे।

इसी कारण राजिता को अनिरुद्ध के विचार और माता-पिता के प्रति इस क़दर झुकाव सुनने में बहुत अजीब-सा लगता था। वह अपने माता-पिता को अपने साथ रखने का इच्छुक था, जबकि वे स्वयं भारत में ही रहना चाहते थे, बच्चों के साथ अमेरिका में नहीं।

यहाँ तो बच्चे पढ़-लिखकर अपनी मर्जी से शादी करते हैं, फिर अपना घर अलग बसा लेते हैं। अपना कमाया धन स्वयं पर व्यय करते हैं। माता-पिता भी अपनी वृद्धावस्था में अपने बच्चों पर निर्भर न रह कर या तो अपना प्रबंध पहले से ही कर लेते हैं अथवा इस योग्य न होने पर किसी ओल्ड-होम में शिफ्ट कर लेते हैं।

भारत में भी तो ओल्ड-होम होंगे ही. . . .पर अनि के माता-पिता के पास तो उनका अपना घर का मकान है, बैंक बैलेंस है, पेंशन है। फिर वे बच्चों के साथ क्यों रहना चाहेंगे? उनका दृष्टिकोण एकदम सही है। राजिता मन ही मन सोचती रही थी।

राजिता ने यही बात कई बार अनिरुद्ध को समझाने का प्रयास किया था फिर भी वह अपनी ज़िद पर ही अ ा था। उसका कहना था, 'राजिता, वृद्धवस्था में केवल धन की कमी ही अकेली समस्या नहीं होती, उनकी समुचित देख-भाल, सेवा और उनकी भावनाओं की कद्र करना भी आवश्यक है। उन्हें उनकी संतान से प्यार, सम्मान और आदर मिलना ज़रूरी है। अपने पूरे जीवन-भर वे तन, मन और धन से अपनी संतान के प्रति समर्पित रहते हैं. . . .जब वृद्ध, अस्वस्थ, रिटायर और अशक्त हो जाते हैं, आँखों से ठीक से दिखाई नहीं देता, शरीर से चला नहीं जाता, तब वही बच्चे उन्हें उनके हाल पर छो दें, यह सही नहीं है। इसके साथ ही राजिता, एक बात और भी है, बुढ़ापे में काम तो हो नहीं पाता शरीर से, पर जीने के लिए कोई आधार तो चाहिये ही. . . .वह आधार होते हैं उनके पोते-पोतियाँ।'

'अनि, तुम्हारी बातें तो कमाल की होती हैं, अति आदर्शवादी।' राजिता कहती।

राजिता की बात सुन कर अनि को लगता था कि यदि वह अपने माता-पिता को अपने साथ रखने का इच्छुक है तो राजिता क्यों बाधक बन रही है?

इतना सब होने पर भी दोनों एक-दूसरे के साथ बेहद खुश थे। उन्होंने वहीं पर कोर्ट-मैरिज कर ली थी। अब उनके पास अपना किराये का अपार्टमेण्ट तथा कार आदि हो गई थी। दोनों अच्छा कमा रहे थे।

विवाह के पश्चात् अनिरुद्ध ने अपने डैडी और माँ को फोन पर बताया था कि उसने अमेरिका में ही शादी कर ली है, वह बहुत खुश है। ल की भारतीय मूल की है, हालाँकि उसकी जाति भिन्न है। वह उसके साथ ही कार्यालय में काम करती है। यह बात सुन कर उसके पिता ने उसे आर्शीवाद दिया था और फोन उसकी माँ पुष्पा के हाथ में पक ा दिया था।

पुष्पा यह बात सुनने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थी. . . .वह फोन पर ही फफक-फफककर रोने लगी। 'क्या हुआ माँ, तुम रो क्यों रही हो?' हैरान-परेशान अनिरुद्ध ने माँ से पूछा था।

'अनि बेटे, एक ही साध तो थी मन में मेरे कि अपने इकलौते पुत्र को घो ी पर बैठे हुए देखूँ . . . .सिर पर साफा-सेहरा लगाये बहू को लेने जाते समय आरती उतारूँ. . . .अपने सभी नाते-रिश्तेदारों को बारात में लेकर जाऊँ। भला, इतनी भी क्या जल्दी थी तुम्हें? यहीं ले आते ल की वालों को और हमारी आँखों के सामने विवाह करते. . . .भारतीय पद्धति से अग्नि के समक्ष फेरे होते. . . .बेटा, तुमने यह अच्छा नहीं किया. . . .कभी जिक्र ही नहीं किया कि तुम्हारी तरफ क्या चल रहा है ! मैं यहाँ ल की पसंद किये बैठी हूँ - सुंदर, सलोनी, पढ़ी-लिखी और आत्मनिर्भर। तुम्हारी माँ मूर्ख थो ी न है, जो तुम्हें किसी अनपढ़, गँवार के साथ बाँध देती। तुमने तो पहले सब बता कर हमारा विश्वास जीतने तक कि तनिक भी परवाह नहीं की। अरे, कम से कम ल की का फोटो तो भेजते !'

इतना सब सुनने पर अनिरुद्ध को अपनी गलती का अहसास हुआ था। उसे कभी इन बातों का तो ध्यान ही नहीं आया था। वह तो सोच रहा था कि माँ और डैड उसकी शादी की ख़बर सुन कर खुश होकर आर्शीवाद देंगे। यह क्या किया उसने? वह द ुखी होकर फोन पर रो प ा था. . . . 'डैडी सॉरी ! मुझे इस बात का ख़्याल ही नहीं आया कभी. . . .मैं भी शायद यहीं की तरह सोचने लगा हूँ। राजिता और उसके परिवार का काफी दबाव था मुझ पर। इसी कारण यह सब घट गया. . . . मैं आप दोनों से क्षमा माँगता हूँ। मैंने आपकी भावनाओं को ठेस पहुँचाई है। अब जैसे ही कार्यालय से छुट्टी मिलेगी मैं आपकी बहू को लेकर इण्डिया आऊँगा, आप उसे जी-भर कर देखना, बातें करना, सजाना और प्यार करना। चाहें तो तब फेरों का संस्कार भी कर लेना प्लीज़ !'

अनि ने माता-पिता से हुई बातचीत राजिता को बताई थी. . . .राजिता यह सब सुन कर बहुत हैरान थी कि इस छोटी-सी बात के लिए अनिरुद्ध के पेरेन्ट्स इतने दु:खी हैं और इसे उन दोनों की 'अवमानना' समझ रहे हैं !

'आख़िर पति-पत्नी का तो जीवन-भर का साथ होता है अनि, इतने ब े होने, पढ़ने-लिखने के बाद भी क्या इण्डिया में बच्चों को अपनी मर्ज़ी से विवाह करने का अधिकार नहीं है? अपना जीवन-साथी खुद चुनना क्या गलती में शुमार है?' उसने पूछा था।

अनिरुद्ध सुन कर भी अनजान-सा बना रहा था. . . .उस समय उसे किसी बहस में प ने का मन नहीं था. . . .उसे तो लग रहा था कि उन दोनों के पंख लग जायें, और वह राजिता को लेकर उसी समय वहाँ पहुँच जाये।

उसने प्रयास भी किया था किन्तु एक नाय प्रोजेक्ट उसी के अन्तर्गत आरम्भ किये जाने के कारण कम्पनी ने उस समय छुट्टी देने से इंकार कर दिया था....वह अब वहाँ के सीनियर-मोस्ट इंज़ीनियर्स में गिना जाता था।

उनके विवाह वाली रात्रि को राजिता के पेरेन्ट्स ने एक शानदार होटल में रात्रि-भोज की व्यवस्था की थी....उसमें वहाँ निवास कर रहे उनके संबंधी और परिचित, दोनों के कार्यालय के सहकर्मी और बॉस तथा कई परिचित परिवारों को आमंत्रित किया गया था। उस समय पहनने के लिए स्पेशल पोशाकें राजिता और अनिरुद्ध के लिए, उन्हीं की ओर से तैयार करवाई गई थीं।

'काश ! हम पहले से प्लैन कर लेते और इस स्पैशल शुभ अवसर पर डैडी और माँ को भी बुला लेते....तब उन्हें इतना गिला-शिकवा नहीं रहता।' अनिरुद्ध ने राजिता से कहा था।

राजिता अनि की इस बात से सहमत तो थी पर उसका कहना था, 'ये नाराज़गी थो` समय की रहेगी, हम जब वहाँ जायेंगे तो उन्हें ज़रूर मना लेंगे अनि, तुम द ुखी मत होओ।'

उनके विवाह के एक सप्ताह बाद ही तो उनके पास भारत से फोन आया था....ब` भइया (ताऊजी के ल के) ने उसे बताया था कि, 'अब चाचा नहीं रहे अनिरुद्ध।'

'क्या कह रहे हो भइया? परसों ही तो मेरी उनसे बात हुई है फोन पर ! अचानक ऐसा क्या हो गया?'

'हार्ट-अटैक। बाथरूम में नहाने के लिए गये थे....वहीं अटैक प गया....उस समय तुम्हारी माँ भी वहाँ नहीं थीं, वह हापु गई थीं....सभी लोग आ चुके हैं अनि, तुम कब तक आओगे? चाचा को मुखाग्नि तुम देना चाहोगे क्या?'

'हाँ भइया, आप उन्हें बर्फ की सिल्ली पर रखें....मैं तुरन्त पहली फ्लाइट से रवाना हो रहा हूँ।'

'अनिरुद्ध के द ुख की सीमा नहीं थी....क्या उसके यहाँ उन्हें बिना सूचित किये विवाह कर लेने का सदमा था यह, जो डैडी की जान ले गया? क्या डैडी इतने व्यथित थे इस बात से? उन्हें हार्ट-अटैक क्यों आया? उसका मस्तिष्क बराबर यही सोचता रहा।'

वहाँ पहुँच कर मुखाग्नि उसी ने दी थी....राजिता उसके साथ भारत नहीं आ पाई थी।

चलते समय उसने अत्यन्त अनुनय-विनय के साथ मम्मा को साथ चलने का अनुरोध किया था, किन्तु पुष्पा नहीं मानी थी, 'बेटा, अभी इस प्रकार घर, सामान और बैंक आदि के एकाउन्ट्स यों छो कर मैं तुम्हारे साथ कैसे चल सकती हूँ? फिर साल भर तक तो मुझे यहाँ रह कर हर माह पण्डित जी को भोजन कराना ही है। पाठ भी करूँगी उनकी आत्मा की शांति के लिए, फिर बरसी होगी।'

'मम्मा, अकेली कैसे रहोगी आप यहाँ?'

'तुम्हारी मौसी को बुला लूँगी।'

'फिर भी, तुम मेरे साथ वहाँ चलोगी तो मैं निश्चिन्त रहूँगा, वरना मुझे तुम्हारी चिन्ता लगी रहेगी। यह सोच लो कि अब तुम्हें रहना तो हमारे साथ ही है।'

दो दिन रह कर अनिरुद्ध अमेरिका के लिए रवाना हो गया था....विवशता थी उसकी, मम्मा साथ चलने को तैयार हो जातीं तो वह दो-तीन दिन और रुकने को तैयार था। पर वह कहाँ मानी थीं।

राजिता माँ बनने वाली थी....नौ महीने बाद ही उसने एक प्यारी-सी बेटी को जन्म दिया था। वे दोनों खुशी से फूले नहीं समा रहे थे। इस अवसर पर अनिरुद्ध ने माँ को आने के लिए कई बार फोन किये थे, पर वह हर बार ही इस बात को टालती रही थीं।

बहुत सोच कर अब अनिरुद्ध ने मन ही मन यही निर्णय लिया कि वह और राजिता अब अमेरिका छो कर इण्डिया ही जाकर रहेंगे और मम्मा को प्यार और आदर के साथ अपने पास रखेंगे।

उसने अपने निर्णय के विषय में मम्मा को फोन पर बताया तो पुष्पा कहने लगी, 'बेटा, मैं बंगलोर में नहीं रह पाऊँगी....वहाँ के लोगों की भाषा, रहन-सहन और खान-पान हमसे एकदम अलग हैं....मैं तुम्हारी मौसी के साथ कभी यहाँ अपने घर में, तो कभी वहाँ मौसी के घर में ठीक हूँ। तुम मेरी वज़ह से अपनी और राजिता की वहाँ की नौकरियाँ मत छो ना....यहाँ इतनी अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती।'

'माँ, आप मेरी बात सुनिए.... आप यदि अकेली या मौसी के साथ रहना चाहती हैं तो भी आपका स्वागत है, जिस घर में हम रहेंगे, उसी में एक कमरे का सेट हम आपके लिए अलग से बनवा देंगे, रसोई, बाथरूम सहित.... बाहर की ओर.... आप चाहें तो हमारे साथ खाना-पीना रखना, नहीं तो बाई आपके लिए आप जैसा चाहेंगी आपकी रसोई में बना देगी। आपके ऊपर हमारा कोई बंधन या कार्य नहीं रहेगा।'

'क्या ज़रूरत है इतना सब करने की, बता?' पुष्पा ने कुछ खीजते हुए कहा था।

पर फिर भी अनिरुद्ध ने अमेरिका में दोनों की नौकरियाँ त्याग कर बंगलौर में प्रबंध कर लिया था। अपना सब सामान कम्पनी की ओर से मिली फरनिश्ड कोठी में छो कर वह राजिता और पुत्री अनुराधा के साथ माँ के पास ग़ाज़ियाबाद पहुँच गया था।

वहाँ पहुँचते ही राजिता ने सिर पर पल्लू लेकर सास के पैर छुये और अनुराधा को उनकी गोदी में डाल दिया था।

अनु अपनी दादी से इस तरह चिपक गई थी मानों पूर्व जन्म का कोई संबंध हो.... माँ ने गु या-सी प्यारी, गोलमटोल गोरी पोती को अपने हृदय से लगा लिया, फिर उसके फूले-फूले कपोलों पर बेतहाशा चुम्मियाँ देने लगीं। जब वह बच्ची को चूमतीं तो बच्ची खूब खिल-खिलाकर हँसती.... दादी-पोती में गहरी छन रही थी।

पोती को पाकर दादी आत्म-संतोष और वात्सल्य से भर उठीं....। राजिता पुत्री के प्रति सास का इतना अनुराग देख कर मन ही मन खिल उठी....।

माँ ने भी उनके साथ बंगलौर चल कर रहने का आमंत्रण स्वीकार कर लिया.... उन्हें जीने का आधार जो मिल गया था।

परिन्दे का घोंसला

सुरेन्द्र सिंह 'संतोषी'

बहुत कठिन था जीवन घोंसले का,
बिना माँझी की पतवार की तरह
दिन-रात गुज़रते थे उसके किसी
अनजान मुसाफ़िर की तरह।
मैं देखता था रोज़ उस पक्षी के
बच्चे की चाँव-चाँव की आवाज़ का शोर
वो भी मज़बूर निग़ाहों से निहारता था
उस नीले आसमान की ओर।
अरमान थे लाखों दिल में
न जाने क्या-क्या सोचता था वो
कभी बारिश कभी तूफ़ान
उस घोंसले में झेलता था वो।
कई बार कोशिश करता था वो
ज़मीं पर गिर प ता था वो
कोई सहारा नहीं, किनारा नहीं,
अपने ज़ख़्मों को भी सेंकता था वो।
किसी किनारे की तलाश में,
हर वक्त भटकता था वो
इधर पेट का ग़म, उधर
ममता का ग़म देखता था वो।
किसी परछाईं को देख कर
मौत का भी ग़म देखता था वो
बार-बार अपने ही ख़्यालों को
बुनता भी, और उधे ता था वो।

पंख उगने लगे, आशियाँ बिखरने लगा
बचपन भी उसका अब सँवरने लगा
खिलाती थी रोज़, चुग्गा जो माँ
वो मंजर भी बदलने लगा।
लाचार मज़बूर अब उ चला
अपनी मंज़िल की तलाश में
खुशी का ग़म, बिछु ने का ग़म
लिए हुए अपने ही आग़ोश में।
फिर बदलने लगी आवाज़ तो
बैठ गया किसी वृक्ष की शाख पर
देख कर दुनिया की राह को
उस चाह को सँजोए अपनी आँख पर।
बस यही उसका अरमान था
एक दिन उ ने का आकाश पर
फिर तो आज़ाद था वह
जा बैठता था वह किसी भी शाख पर।
अब तो जवान था वह, किसे पहचानता
उस वीराने में सबसे अनजान था वो
बस एक साथी की तलाश में
बेपनाह घूमता था वो।
मिल गया उसे भी एक जीवन साथी
फिर खिल उठा वह भी किसी गुलज़ार की तरह
'सन्तोषी' जीव फिर बनाने लगा
एक घोंसला उस घोंसले की तरह।

उज्ज्वल भविष्य का प्रारूप

अंजु दुआ जैमिनी

मन की प्यास है कविता
मस्तिष्क का श्वास है कविता
ओस में गुँथी घास है कविता
तन-मन के मिलन का मधुमास है कविता
टुक ा-टुक ा त पता अहसास है कविता
पत्थरों के शहर का खोखला परिहास है कविता
इक्कीसवीं सदी में ठहरा, आभास है कविता !
बरखा की ठंडी फुहार है कविता
शीतल मन में गुनगुनाती बहार है कविता
धूप-अगरबत्ती से महकते ॐ का ओंकार है कविता
हद से गुज़र जाए वो आसार है कविता
भ्रष्ट कुर्सियों का ताज़ा अख़बार है कविता
नारी को बेचता ब्यौपार है कविता
इक्कीसवीं सदी में तपते मौसम में बौछार है कविता
अल्ह किशोरी सा मायाजाल है कविता
चंचल चपल इठलाती चाल है कविता
उलझी जटिलता-सा कमाल है कविता
गीत और सुर का ताल है कविता
धरा में धँसता पाताल है कविता
विक्रम के काँधे पे लटकता बेताल है कविता
इक्कीसवीं सदी में नंद का गोपाल है कविता
दौलत में तुलते आदमी का बौराया रूप है कविता
सर्दियों में अधखिली धूप है कविता
चेहरे पे छलकता अनूप है कविता
नव संस्करण सरीखा आधुनिक स्वरूप है कविता
आईने में मुग्ध सौन्दर्य-बोध का प्रतिरूप है कविता
इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य का प्रारूप है कविता।

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित